ISSN-0971-8397

योजना

अप्रैल 2020 | विकास को समर्पित मासिक | ₹ 22

भारत का संविधान

प्रमुख आलेख

मानवाधिकारों का संरक्षण

जयदीप गोविंद

फोकस

मौलिक अधिकारों और कर्त्तव्यों में संतुलन

डॉ रणवीर सिंह, डॉ ऋतु गुप्ता

विशेष आलेख

भारतीय संविधानवाद और शासकीय अंगों के बीच संतुलन

एस एन त्रिपाठी

भारत के संविधान का प्रारूपण

डॉ आर एस बावा

भारतीय संसद – कार्यनिष्पादन और चुनौतियां

एम आर माधवन

t.me/PDFkaAdda

हस्तलिखित संविधान

भारत का संविधान टाइप या मुद्रित नहीं था, लेकिन अंग्रेजी और हिंदी दोनों में हस्तलिखित और सुलेखित था। यह पूरी तरह से शान्ति निकेतन के कलाकारों द्वारा आचार्य नंदलाल बोस के मार्गदर्शन में, दिल्ली में प्रेम बिहारी नारायण रायज़ादा द्वारा किए गए सुलेख ग्रंथों द्वारा किया गया था। भारत के संविधान की मूल प्रतियों को भारत की संसद की लाइब्रेरी में विशेष हीलियम से भरे बॉक्स में रखा गया है। संविधान का प्रत्येक भाग भारत के राष्ट्रीय इतिहास के एक चरण या दृश्य के चित्रण से शुरू होता है। संविधान के प्रत्येक भाग की शुरुआत में, नंदलाल बोस ने भारत के राष्ट्रीय अनुभव और इतिहास के एक चरण या दृश्य को चित्रित किया है। कलाकृति और चित्र (सभी में 22), बड़े पैमाने पर लघु शैली में प्रस्तुत किए गए, भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास के विभिन्न अवधियों में से सिंधु घाटी में मोहनजोदड़ो, वैदिक काल, गुप्त और मौर्य साम्राज्यों और मुगल युग से लेकर राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन। ऐसा करके, नंदलाल बोस ने हमें भारतीय उपमहाद्वीप के समृद्ध इतिहास, परंपरा और संस्कृति के 4000 वर्षों के दौरान के चित्रों से शानदार यात्रा कराई है। यह दुनिया का सबसे लंबा लिखित संविधान है जिसमें 395 अनुच्छेद, 22 भाग और 12 अनुसूचियां हैं। ❑

स्रोत: www.doj.gov.in

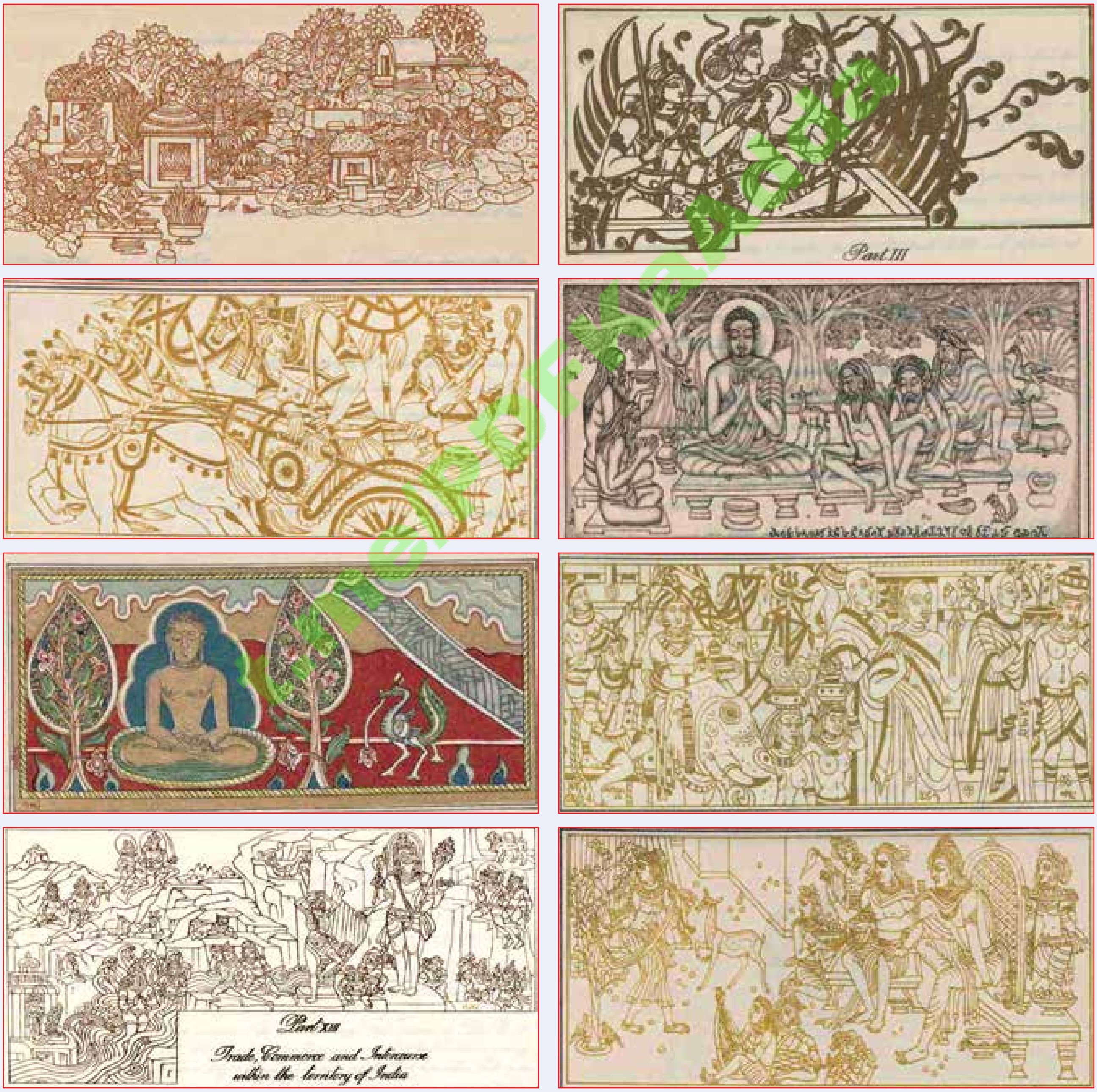

हस्तलिखित संविधान से कुछ चित्र

योजना

वर्ष : 64
अंक : 4

अप्रैल 2020
चैत्र-वैशाख, शक संवत् 1942

मूल्य : ₹ 22
पृष्ठ : 68

वेबसाइट www.publicationsdivision.nic.in

प्रधान संपादक : राजेंद्र चौधरी

वरिष्ठ संपादक : कुलश्रेष्ठ कमल

संपादक : डॉ ममता रानी

संपादकीय कार्यालय

648, सूचना भवन, सीजीओ परिसर,
लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003
दूरभाष (प्रधान संपादक): 24369422

संयुक्त निदेशक (उत्पादन) : वी के मीणा

आवरण : गजानन पी धोपे

योजना का लक्ष्य देश के आर्थिक विकास से संबंधित मुद्दों का सरकारी नीतियों के व्यापक संदर्भ में गहराई से विश्लेषण कर इन पर विमर्श के लिए एक जीवंत मंच उपलब्ध कराना है।

योजना में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। जरूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो।

योजना में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए योजना उत्तरदायी नहीं हैं।

योजना में प्रकाशित आलेखों में प्रयुक्त मानचित्र व प्रतीक आधिकारिक नहीं है, बल्कि सांकेतिक हैं। ये मानचित्र या प्रतीक किसी भी देश का आधिकारिक प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं।

योजना मंगवाने की दरें

एक वर्ष: ₹ 230, दो वर्ष: ₹ 430, तीन वर्ष: ₹ 610

पत्रिका न मिलने की शिकायत के लिए helpdesk1.dpd@gmail.com **पर ईमेल करें, योजना की सदस्यता लेने या पुराने अंक मंगाने के लिए भी इसी ईमेल पर लिखें या संपर्क करें- दूरभाष: 011-24367453**

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें-

संपादक (प्रसार एवं विज्ञापन)
प्रसार एवं विज्ञापन अनुभाग
प्रकाशन विभाग,
कमरा सं. 56, भूतल, सूचना भवन,
सीजीओ परिसर, लोधी रोड,
नयी दिल्ली-110003

@DPD_India

इस अंक में

प्रमुख आलेख
मानवाधिकारों का संरक्षण
जयदीप गोविंद....9

फोकस
मौलिक अधिकारों और कर्त्तव्यों में संतुलन
डॉ रणवीर सिंह, डॉ ऋतु गुप्ता....15

मौलिक कर्त्तव्यों का उद्देश्य
अनुभव कुमार....19

भारत के संविधान का प्रारूपण
डॉ आर एस बावा....23

अदालती निर्णयों में संवैधानिक सुधार: पहला संविधान संशोधन
एन एल राजा....25

भारतीय संसद – कार्यनिष्पादन और चुनौतियां
एम आर माधवन....29

संविधान सभा और संविधान का निर्माण....34

विशेष आलेख
भारतीय संविधानवाद और शासकीय अंगों के बीच संतुलन
एस एन त्रिपाठी, सी शीला रेड्डी....39

विदेश संबंध और भारतीय संविधान
मनोज कुमार सिन्हा....45

महिला अधिकार : चिंतन, प्रतिबद्धता और कार्रवाई
डॉ के श्यामला....49

एक जीवंत दस्तावेज़
महिमा सिंह....54

पंचायती राज व्यवस्था
डॉ चन्द्रशेखर प्राण....57

लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ
जगदीश उपासने....62

नियमित स्तंभ

पुस्तक चर्चा....56

क्या आप जानते हैं?
नागरिकता (संशोधन) कानून 2019....66

विकास पथ
भारत के संविधान पर प्रधानमंत्री के विचार....कवर-3
अल्पसंख्यकों के लिए नीतियां और योजनाएं....कवर-3

प्रकाशन विभाग के देश भर में स्थित विक्रय केंद्रों की सूची के लिए देखें पृ.सं. 13

हिंदी, असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, तमिल, तेलुगु, मराठी, ओडिया, पंजाबी तथा उर्दू में एक साथ प्रकाशित।

आपकी राय

विश्लेषणात्मक आलेख

शिक्षा में नवाचार पर आधारित फरवरी, 2020 का अंक पढ़ा। अंक में प्रकाशित विश्लेषणात्मक आलेखों से नवीन विचारों का निर्माण हुआ। विकास को समर्पित इस पत्रिका के अध्ययन से मेरे मन में एक नई चेतना का संचार होता है। इसलिए मैं प्रत्येक माह इसके नवीन अंक की प्रतीक्षा करता रहता हूं। प्रत्येक वस्तु एवं क्रिया में परिवर्तन, प्रकृति का नियम है। परिवर्तन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होते हैं। इन्हीं परिवर्तनों से व्यक्ति और समाज को स्फूर्ति, चेतना, ऊर्जा और नवीनता मिलती है। नवाचार कोई नया कार्य करना मात्र नहीं है,बल्कि किसी भी कार्य को नये तरीके से करना भी नवाचार है। शिक्षा में नवाचार खुद से नहीं आता है। इसे खोजना पड़ता है तथा योजनाबद्ध तरीके से इसे व्यवहार में लाना पड़ता है ताकि शैक्षणिक कार्यों को गति मिल सके। शिक्षा में नवाचार के माध्यम से अधिगम प्रक्रिया को सरल बनाया जाता है तथा विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास पर बल दिया जाता है। शिक्षा में नवाचार इसलिए भी जरूरी है ताकि प्रशिक्षकों व प्रशिक्षणार्थियों में नवीनतम वैज्ञानिक दृष्टिकोणों का विकास हो सके।

कोई भी देश शिक्षा के बल पर ही विकास के पथ पर अग्रसर हो सकता है। शिक्षा हमेशा दोष रहित और भेदभाव रहित हो अर्थात समावेशी हो, जिसमें समाज के सभी वर्ग शामिल हो। इसी को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ निर्णय के आलोक में दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 कानून बनाया है। इस कानून के द्वारा दृष्टि दिव्यांगजनों के बीच कम रोशनी वाली एक अन्य श्रेणी का प्रावधान किया गया हैं। भारतीय संविधान में भी अनुच्छेद 21क और 45 में शिक्षा से संबंधित प्रावधान किया गया है। संविधान के भाग 3 के अंतर्गत उपबंधित अनुच्छेद 21क में शिक्षा के अधिकार का प्रावधान किया है। छियासिवें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा जोड़े गए इस अनुच्छेद के अनुसार, 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को 'नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा' प्रदान की जाएगी।

अंत में कहा जा सकता है कि शिक्षा में नये विचारों को अपनाकर ही भारत विकास के पथ पर अग्रसर हो सकता है और सरकार इसके लिए निरंतर प्रयासरत हैं।

– प्रिंस गुप्ता
इनायतपुर, प्रबोधि सराय,
वैशाली, बिहार

डिजिटल शिक्षा - ज़रूरी है जागरूकता

अधिकांश भारतीय गांव से आते हैं जिन्हें स्वयं तथा स्वयं प्रभा और दीक्षारंभ तथा इसके अतिरिक्त गैर सरकारी संगठनों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा दिए जा रहे ऑनलाइन नि:शुल्क शिक्षण या प्रशिक्षण से अवगत नहीं है जिसके कारण ऑनलाइन शिक्षा अपेक्षाकृत कम प्रभावी हो रही है इसका प्रमुख कारण लोगों में जागरूकता ना होने के कारण लोग इसका लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। स्कूलों, कॉलेजों, कोचिंग तथा शिक्षा से जुड़े अध्ययन अध्यापन कर रहे लोगों एवं अधिकारियों के माध्यम से विद्यार्थियों को ऑनलाइन शिक्षण व प्रशिक्षण दिए जाने वाले कार्यक्रमों के बारे में जागरूक किए जाएं तथा जिम्मेदार व्यक्तियों की इसके लिए जवाबदेही भी तय की जानी चाहिए सोशल मीडिया के माध्यम से भी विज्ञापन के जरिये जागरूक किया जा सकता है। दूरस्थ शिक्षा एक प्रभावी माध्यम हो सकती है भारतीय समाज को आधुनिक वैश्विक प्रणाली के अनुसार अपनी संस्कृति में सामंजस्य स्थापित करने में यह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है क्योंकि इस ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से भारतीय ग्रामीण व दूर-सुदूर इलाके तथा मुख्य धारा से वंचित जो पिछड़े तबके हैं, उन तक भी समान शिक्षा भेदभाव रहित, तथा सरकारी योजनाओं से भी जोड़ने में सहायता मिलेगी और युवाओं में आधुनिक वैश्वीकरण रोज़गार परक कौशल को निखारा जा सकता है तथा भारतीय अर्थव्यवस्था को 5 ट्रिलियन डॉलर की बनाने में भी उनकी अहम भूमिका को सुनिश्चित किया जा सकता है।

– सुशील कुमार यादव
जौनपुर, उत्तर प्रदेश

शिक्षण प्रक्रिया में रचनात्मकता को समर्पित अंक

व्यक्ति एवं समाज में हो रहे परिवर्तनों का प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ा है। शिक्षा को समयानुकूल बनाने के लिए शैक्षिक क्रियाकलापों में नूतन प्रवृत्तियों ने अपनी उपयोगिता स्वयं सिद्ध कर दी है।

योजना पत्रिका का फरवरी अंक इन्हीं नवीन प्रवृत्तियों को समर्पित है, जिसमें शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न प्रकार के नवाचारों का उल्लेख किया गया है, जिनका शिक्षा की प्रक्रिया में प्रवेश अत्यन्त ही आवश्यक है।

नवाचार एक विचार है, एक व्यवहार है अथवा वस्तु है, जो नवीन और वर्तमान का गुणात्मक स्वरूप है। इस प्रक्रिया को शिक्षा में शामिल करने से न केवल शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर सुधार होगा वरन् देश की भावी पीढ़ी नए आयामों से परिपूर्ण बनेगी और वैश्विक पटल पर दृढ़तापूर्वक अपने देश की नवाचारी प्रवृत्ति को प्रस्तुत करेगी।

– राघव जायसवाल
बिलसण्डा, जिला-पीलीभीत,
उत्तर प्रदेश

विद्या ददाति विनयम्

शिक्षा में नवाचार पर केंद्रित फरवरी, 2020 का अंक पढ़ा। अंक के सभी लेखों से ज्ञानोपयोगी जानकारी मिली। शिक्षा को किसी भी राष्ट्र के विकास का मार्ग माना जाता है। कहा गया है 'विद्या ददाति विनयम्' अर्थात विधा से विनय आती है। वह व्यक्ति जो अनपढ़ है, वह पृथ्वी पर बिना पूंछ वाले पशु के समान है। ज्ञान ही हैं जो मनुष्य को मनुष्य बनाता है। ज्ञान प्राप्त करना शिक्षा है और जिस प्रकार ज्ञान का क्षेत्र व्यापक है उसी प्रकार शिक्षा का क्षेत्र भी व्यापक हैं। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति विभिन्न सामाजिक वर्गों तथा विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त असमानताओं को दूर कर एक ज्ञानवान समाज की रचना करना है।

महात्मा गांधी के अनुसार, 'शिक्षा आत्म साक्षात्कार या अपने को पहचानने वाले कला का नाम है।' वे मानते थे कि अगर शिक्षा दोषपूर्ण होगी तो देश में आदर्श व्यवस्था की स्थापना नहीं हो सकती। उन्होंने 'बुनियादी शिक्षा' पर दिया है, जिसके अंतर्गत प्रत्येक विधार्थी को मूल रूप से कोई न कोई दस्तकारी सिखाई जानी चाहिए और सभी विषयों की शिक्षा उस दस्तकारी द्वारा दी जानी चहिए। भारत में सर्वप्रथम बालकृष्ण गोखले द्वारा 1910 में नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की मांग की गई। 1937 में महात्मा गांधी और जाकिर हुसैन ने 'नई तालीम की अवधारणा 'प्रस्तुत की, जिसके अंतर्गत शिक्षा के साथ-साथ बच्चों को कार्यकुशल बनाने पर बल दिया गया।

1944 में शिक्षा सम्बन्धी 'केंद्रीय सलाहकार समिति' ने अपनी रिपोर्ट में लिखा, 'शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बच्चों को सामाजिक अनुभवों से गुजारना है, न कि सिर्फ औपचारिक हिदायतें देना।' वर्ष 1966 में, स्वतंत्र भारत में पहली बार शिक्षा सम्बन्धी आयोग का गठन किया गया। कोठारी आयोग नाम के इस आयोग ने देश के सभी बच्चों के लिए समान शिक्षा की वकालत की। 1986 में 'नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति' आने के बाद देश में नवोदय विद्यालय की स्थापना की गई। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में शिक्षा के अधिकार से संबंधित प्रावधान किया गया है। 86वे संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा संविधान में शिक्षा के अधिकार को अनुच्छेद 21क में जोड़ा गया हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की साक्षरता दर 74 प्रतिशत हैं, जिसमें पुरुष साक्षरता दर 82.02 प्रतिशत और महिला साक्षरता दर 65.05 प्रतिशत है। सरकार को योग शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए क्योंकि इससे लोगों का स्वास्थ्य अच्छा होगा और रोज़गार के नए अवसरों का निर्माण होता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि शिक्षा मानव समाज को विकास के मार्ग पर अग्रसर करती है। यह एक ऐसे समाज का निर्माण करती है जहां विभिन्न प्रकार की सामाजिक बुराइयां नहीं होती है तथा वैचारिक मतभेद होते हुए भी एकरूपता होती है। भारत सरकार शिक्षित भारत बनाने के लिए लगातार प्रयत्नशील है। शिक्षा का अधिकार कानून, नवोदय, केन्द्रीय विद्यालयों की स्थापना, दोपहर का भोजन, छात्रवृत्तियां सहित शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की कार्यक्रम उसी कड़ी का हिस्सा हैं। शिक्षा सभ्यता और प्रगति की जननी है। 'सरकार को बालिका शिक्षा पर व्यापक ध्यान देने चाहिए क्योंकि एक लड़की के शिक्षित होने से पुरा समाज शिक्षित होता हैं।'

– **अमित कुमार 'विश्वास'**

रामपुर नौसहन, हाजीपुर, वैशाली, बिहार

जन जन का बजट

योजना केंद्रीय बजट 2020-21 के संपादकीय जन जन का बजट में तथ्यों के आधार पर तर्कसंगत विश्लेषण किया गया है। बजट के तीन मुख्य पहलुओं के जरिये बजट के लक्ष्यों को प्राप्त करने के प्रयास किये जाएंगे- 1. आकांक्षी भारत, 2. आर्थिक विकास और 3. जिम्मेदार समाज।

बैंकों में जमा राशियों पर बीमा कवर सीमा पांच लाख करना एक स्वागत योग्य कदम है। आर्थिक अपराधों के लिए कठोर और त्वरित दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिए।

बजट में सरकार के प्रयास सराहनीय है, किन्तु कोई भी सरकार अपने प्रस्तावों से देश के सभी नागरिकों को प्रसन्न नहीं कर सकती।

– **विश्वनाथ सिंहानिया**

मालवीय नगर, जयपुर

जीवन जीने में आसानी

विकास पथ 'जीवन जीने में आसानी' नामक विषय वस्तु में केंद्रीय बजट की सारी विशेषताएं कहती है। हम यहां पर आकांक्षी भारत, आर्थिक विकास, और जिम्मेदार समाज से जुड़े कई विषयों को सारांश रूप में देखते हैं। 'आपकी राय' कालम पाठकों को अपनी राय व्यक्त करने तथा नए-नए पाठकों से रूबरू होने का मंच है। इस अंक के संपादकीय में 'जन जन का बजट' नामक शीर्षक हमारा मार्गदर्शन करता है। अगर हम यह सही दिशा में कोशिश के साथ-साथ अपनी नियति और आकांक्षाओं को लेकर सकारात्मक है तो हमारा लक्ष्य बहुत जल्द ही हमे प्राप्त होगा।

"पृष्ठ संख्या 23 पर विश्व बैंक की इज ऑफ डूइंग बिजनेस की रिपोर्ट और भारत की वैश्विक स्थिति हमारे तमाम साथियों की मदद कर सकती है।'' किसी भी आलेख को पढ़ने के साथ-साथ उसका संदर्भ ग्रंथ सूची जरूर देखा करें, आपकी मानसिक तथा आपकी सोचने की क्षमता में विकास होगा। पृष्ठ संख्या 51 से 62 तक दी गई सामग्री हमारी मानसिक पटल पर ऐसे अंकित होगी जैसे हम अपने रुचिकर पुस्तकों को अंकित करते हैं। पुस्तक चर्चा वाले कॉलम में भारत या इंडिया 2020 नामक संदर्भ ग्रंथ सूची सरकार की महत्वपूर्ण योजनाओं नीतियों तथा क्रियान्वयन को एक अच्छे संग्रह के रूप में हमें मिलता है तथा सरकार की आगामी योजनाएं क्या क्या है और क्या क्या हमारी अपनी दिक्कतें हैं यह सब आप भारत 2020 जैसे महत्वपूर्ण पुस्तक में पढ़ सकते हैं।

चलते चलते एक महत्वपूर्ण निवेदन कृपया 'पुस्तक चर्चा 'को सिर्फ एक पुस्तक तक सीमित ना रखें कई पुस्तकों को भी इसमें शामिल किया जा सकता है।

– **देवेश त्रिपाठी**

ग्राम-मेन्हदुपार, संत कबीरनगर, उत्तर प्रदेश

योजना अग्रणी बनी रहे

सबसे पहले इस योजना पत्रिका को दिल से धन्यवाद कहता हूं। इस पत्रिका के अध्ययन से व्यक्ति की विचार शैली, व्यक्ति का दृष्टिकोण सकारात्मक रूप से प्रभावित होता है, मैं हमेशा योजना पत्रिका को अग्रणी देखना चाहता हूं... धन्यवाद।

– **हेमंत विश्वकर्मा**

hemantvishwakarma19@gmail.com

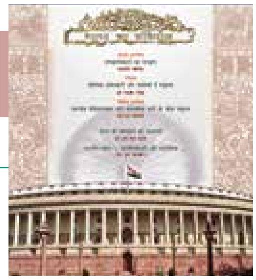

हम, भारत के लोग

भारत सरकार ने 2015 में भारत रत्न, बाबा साहब डॉ भीमराव आंबेडकर की 125वीं जयंती के मौके पर ऐलान किया था कि हर साल 26 नवंबर को संविधान दिवस मनाया जाएगा। पिछले साल यानि साल 2019 में देश का संविधान लागू होने के 70 साल पूरे हो गए। संविधान के मुख्य वास्तुकार के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने और हमारे देश की भाईचारे और मेलजोल की समृद्ध संस्कृति और विविधता के प्रचार-प्रसार के लिए सरकार ने 26 नवंबर 2020 तक कई तरह की गतिविधियों और कार्यक्रम चलाने का ऐलान किया है। इन तमाम गतिविधियों और कार्यक्रमों के जरिये सरकार संविधान की भावना को प्रदर्शित करना चाहती है। साथ ही, 14 अप्रैल को डॉ आंबेडकर की 130वीं जयंती भी है।

योजना का यह अंक इस महान शख्स की विरासत और संविधान की महत्ता को श्रद्धांजलि है। इस महत्वपूर्ण दस्तावेज़ को तैयार हुए 70 साल से भी ज़्यादा हो चुके हैं, लेकिन आज भी यह सरकार, न्यायपालिका और नागरिकों के लिए बेहद प्रासंगिक है। हमारा संविधान न्याय, स्वतंत्रता और समानता के बुनियादी सिद्धांतों पर आधारित है, जो देश के नागरिकों को उनके मौलिक कर्त्तव्यों की भी याद दिलाता है, ताकि देश की एकता और अखंडता सुरक्षित रहे, साथ ही शासन के लिए नीति-निर्देशक के साथ हमारा संविधान समग्र रूप से भारतीय समाज के लिए पथ-प्रदर्शक है।

भारत का संविधान विशेषज्ञों के एक समूह के शोध और विचार-विमर्श का परिणाम है। संविधान के इन निर्माताओं ने अपनी दूरदर्शिता और विवेक से एक भविष्योन्मुखी और बेहतर दस्तावेज़ तैयार किया है। यह दस्तावेज़ हमारे आदर्शों और आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करता है। साथ ही, सभी भारतीयों के भविष्य की भी सुरक्षा करता है। इन विशेषज्ञों को हमारे संविधान में सबसे अच्छे पहलुओं को शामिल करने और इसे दुनिया का सबसे व्यापक संवैधानिक दस्तावेज़ बनाने का श्रेय जाता है। इस दस्तावेज़ में संशोधन के लिए भी पर्याप्त गुंजाइश है। साथ ही, यह भी सुनिश्चित किया गया कि संविधान न तो काफी सख्त हो न ही लचीला। पिछले सात दशक में इसमें 100 से भी ज्यादा संशोधन हो चुके हैं और इससे हमारा संविधान ज्यादा मजबूत और प्रासंगिक बना है।

संविधान की प्रस्तावना में भारत को संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित किया गया है, जो न्याय, स्वतंत्रता और समानता के लक्ष्यों को हासिल करने के लिए प्रतिबद्ध है। साथ ही, इसमें भाईचारा और हर आदमी का सम्मान बढ़ाने और देश की एकता और अखंडता को सुरक्षित रखने की भी बात है।

ये अधिकार हमारे मौलिक कर्त्तव्यों के अनुरूप हैं। संविधान का पालन करना और इसके संस्थानों और आदर्शों की गरिमा को बनाए रखना हर नागरिक का कर्त्तव्य है। साथ ही, हमारे स्वतंत्रता संघर्ष से जुड़े आदर्शों के विचारों पर चलना, महिलाओं की गरिमा के विरुद्ध परंपराओं को खत्म करना और हमारी संस्कृति की समृद्ध विरासत को सुरक्षित रखना भी हमारा कर्त्तव्य है।

भारतीय समाज में कानून और मूल्यों पर आधारित शासन की परंपरा काफी पुरानी है। भारत में न्याय से जुड़े मूल्यों को अपनाने की परंपरा रही है और हमारा संविधान इन्हीं मूल्यों से प्रेरित है। तकरीबन 1500 पुराने कानूनों को हटाया गया है। पुराने और अप्रासंगिक हो चुके कानूनों को खत्म करने के साथ-साथ नए जरूरी कानून भी बनाए गए हैं, ताकि हमारा सामाजिक ढांचा और मजबूत हो सके। बाबा साहब डॉ भीमराव आंबेडकर ने कहा था, ''संविधान अधिवक्ताओं का दस्तावेज़ मात्र नहीं है, यह जीवन का माध्यम है और इसकी भावना सदैव युग की भावना है।''

सरकार ने किन्नरों के अधिकारों और तीन तलाक से लेकर दिव्यांग लोगों के अधिकारों तक के लिए कानून बनाए हैं। कुल मिलाकर कहा जाए, तो सरकार ने पूरी संवेदनशीलता के साथ काम किया है और आधुनिक समाज की जरूरतों के लिए पहल की है।

'भारत का संविधान' दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र की बुनियाद है। यह देश के लोकतांत्रिक ढांचे में सर्वोच्च कानून है और यह हमारे लिए पथ प्रदर्शक का काम करता है। हमारे पाठक ही योजना की पूंजी हैं। हमें उम्मीद है कि यह अंक छात्रों, अकादमिकों, वकीलों, अधिकारियों समेत सभी पाठकों के लिए उपयोगी होगा। ❑

t.me/PDFKaAdda

मानवाधिकारों का संरक्षण

जयदीप गोविंद

"मानवाधिकार सरकार द्वारा प्रदत्त विशेषाधिकार नहीं हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने मानवता के गुणों के जरिए इन्हें प्राप्त करने का हकदार है।"

– *मदर टेरेसा*

अपनी विकास यात्रा के दौरान समूचा विश्व असंख्य प्रकार की वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय उन्नतियों का साक्षी रहा है। हालांकि इस जद्दोजहद में, यह अक्सर भुला दिया जाता है कि यदि जनता के मानवाधिकारों का आदर और सम्मान नहीं होगा, तो किसी भी तरह का विकास टिकाऊ नहीं रहेगा। यहां प्रश्न उठता है कि आखिर "मानवाधिकार क्या है?" स्पष्ट रूप से कहा जाए, तो मानवाधिकार वे अधिकार हैं, जो राष्ट्रीयता, जाति, धर्म, लिंग आदि का भेद किए बगैर प्रत्येक व्यक्ति को केवल उसके मनुष्य होने के कारण प्राप्त हैं। वे हमारी प्रकृति में निहित हैं और उनके बिना हम मनुष्य के रूप में नहीं रह सकते। मानवाधिकार और मूलभूत स्वतंत्रता हमें अपने मानवीय गुणों को पूर्णतया विकसित करने और उनका उपयोग करने, हमारी बुद्धिमत्ता, हमारी प्रतिभाओं और हमारी अंतरात्मा तथा हमारी भौतिक, आध्यात्मिक और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने की अनुमति देते हैं।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के माध्यम से दुनिया भर के देशों को विशेष रूप से मानव अधिकारों के संरक्षक के रूप में कार्य करने के लिए प्रेरित किया गया। 1966 में, संयुक्त राष्ट्र महासभा ने दो महत्वपूर्ण प्रसंविदाओं को अंगीकार किया, जो एक ही समय में सामान्य और सार्वभौमिक दोनों हैं, एक नागरिक और राजनीतिक अधिकारों से संबंधित है और दूसरी आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों से संबंधित है। दोनों प्रसंविदाएं मुख्य रूप से व्यक्तियों को प्राप्त अधिकारों से संबंधित हैं। नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 और वैकल्पिक प्रोटोकॉल समानता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, मनमाने रूप से होने वाली गिरफ्तारी और हिरासत से मुक्ति, अनिवार्य व्यक्तिगत सेवा प्रदान करने से मुक्ति, अभिव्यक्ति और अंतरात्मा की स्वतंत्रता, देश के शासन में भाग लेने के अधिकार से संबंधित हैं। आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 कार्य के अधिकार, उचित वेतन के अधिकार, सामूहिक सौदेबाजी के अधिकार, व्यापार या व्यवसाय करने के अधिकार, संस्कृति की रक्षा के लिए संस्थाओं की स्थापना करने के अधिकार आदि से संबंधित है। चूंकि मानवाधिकार और मूलभूत स्वतंत्रताएं अविभाज्य और अन्योन्याश्रित हैं, इसलिए समस्त अधिकारों के कार्यान्वयन, प्रोत्साहन और संरक्षण पर समान रूप से ध्यान दिया जाना और तत्काल विचार किया जाना चाहिए। अनेक देशों ने अपने कानूनों को यथासंभव मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा और अन्य अंतरराष्ट्रीय उपकरणों के सिद्धांतों और व्यवहारों के अनुरूप बनाने के लिए कानून पारित किए हैं। भारत एक संप्रभु, समाजवादी, लोकतांत्रिक गणराज्य है। इन अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं के अस्तित्व में आने से काफी अर्सा पहले ही भारतीय संविधान ने अपने नागरिकों को कई अधिकारों की गारंटी प्रदान की, जिन्हें मौलिक अधिकारों के रूप में जाना जाता है, जो संविधान के भाग-III में प्रतिष्ठापित हैं। जीवन जीने का अधिकार, स्वतंत्रता, समानता, गरिमा, भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार के अलावा धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, जिसमें किसी भी धर्म को मानने, आचरण करने और उसका प्रचार करने का अधिकार निहित है, शोषण के विरुद्ध अधिकार और अल्पसंख्यकों के संस्कृति संबंधी अधिकार और शिक्षा संस्थानों की स्थापना का अधिकार, कुछ ऐसे लागू करने योग्य अधिकार हैं, जिनका राज्य द्वारा कार्यकारी कार्रवाई के माध्यम से उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

संविधान मूलभूत स्वतंत्रता के संरक्षण के माध्यम से व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से समस्त नागरिकों के मानवाधिकारों की रक्षा

लेखक राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एनएचआरसी) के महासचिव हैं। ईमेलः sgnhrc@nic.in

करता है। संविधान में मौलिक अधिकारों की छह व्यापक श्रेणियों के रूप में इनकी गारंटी प्रदान की गई है, जो तर्कसंगत हैं। संविधान के भाग-III में निहित अनुच्छेद 12 से 35 मौलिक अधिकारों से संबंधित है।

मौलिक अधिकारों को भारत के संविधान में प्रमुख महत्व दिया गया है। यहां ऐसी न्यायिक उद्घोषणाएं की गई हैं, जिन्होंने भारत के संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों की श्रेष्ठता को बरकरार रखा है। भारत के उच्चतम न्यायालय ने केशवानंद भारती मामले में, मिनर्वा मिल्स और आई. आर. कोएलो मामले में यह बरकरार रखा कि हालांकि मौलिक अधिकार संशोधन से निरापद नहीं हैं, लेकिन इन्हें एक साथ, कोई विशेष अधिकार या उसके कुछ हिस्से को मूलभूत विशेषताओं के रूप में रखा जा सकता है, जिन्हें भारत के संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत संशोधन की शक्ति का उपयोग करके संशोधित नहीं किया जा सकता है।

समय बीतने और नए घटनाक्रम घटित होने के साथ भारत में अधिकारों की अवधारणा की न्यायपालिका और अन्य सरकारी और गैर सरकारी पक्षकारों द्वारा समीक्षाएं और नए सिरे से व्याख्याएं की गईं। गौरवपूर्ण स्थान रखने वाला जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार सर्वाधिक पवित्र और संजोकर रखा गया अधिकार है। अनुभवों और बढ़ती चिंताओं ने न्यायिक घोषणाओं के माध्यम से अधिकारों की नयी पीढ़ी को मान्यता प्रदान की। 1978 के मेनका गांधी मामले में सुनाए गए निर्णय से पूर्व, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 की कानून द्वारा असमर्थित कार्यकारी कार्रवाई के खिलाफ गारंटी के रूप में आंशिक टीका की गई थी। लेकिन इस मामले ने नए आयाम प्रदान किए और यह निर्धारित किया कि इसने कानून निर्माण को भी इस तरह सीमित किया है कि किसी व्यक्ति को जीवन जीने या निजी स्वतंत्रता से वंचित करने की प्रक्रिया निर्धारित करने से पहले, वह एक उचित, निष्पक्ष और न्यायपूर्ण प्रक्रिया सुनिश्चित करे। उच्चतम न्यायालय ने विविध निर्णयों में कहा कि अनुच्छेद 21 में प्रतिष्ठापित जीवन जीने का अधिकार मात्र उत्तरजीविता और पशुओं के अस्तित्व की रक्षा से कुछ बढ़कर है। बीते कुछ वर्षों से न्यायपालिका को भारत में बनने वाले कानूनों की न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्रदान करते हुए मानवाधिकार विधिशास्त्र विकसित किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य जनता के बुनियादी मानवाधिकारों का प्रतिनिधित्व करने वाले मौलिक अधिकारों के संबंध में संविधान की सर्वोच्चयता सुरक्षित करना है। यह कार्य राज्य को मौलिक अधिकारों के अंश का बहिष्कार करने या पूरी तरह निष्प्रभावी करने वाले कानूनों का निर्माण करने से निषिद्ध करते हुए किया गया है। जिसके परिणामस्वरूप लोगों के मानवाधिकार अब सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से मौलिक रूप से प्रतिष्ठित है, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

- किसी भी व्यक्ति का 'बंधुआ मजदूर' या श्रम की अनुचित परिस्थितियों के अधीन नहीं रहने का अधिकार
- मुक्त होने के पश्चात् बंधुआ मजदूर को पुनर्वास का अधिकार
- वैध माध्यमों से आजीविका कमाने का अधिकार
- गरिमापूर्ण वातावरण और उचित आवास का अधिकार
- प्रत्येक राज्य का दायित्व है कि वह किसी व्यक्ति के दोषी या निर्दोष होने की परवाह न करते हुए प्रत्येक रोगी को तत्काल चिकित्सा सहायता उपलब्ध कराते हुए प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की रक्षा करे। घायल व्यक्ति के जीवन की रक्षा होने के पश्चात ही आपराधिक कानून प्रचलित होता है
- बीमित व्यक्ति की भुगतान की क्षमता और साधनों के दायरे के भीतर उचित जीवन बीमा पॉलिसी का अधिकार
- अच्छी सेहत का अधिकार
- भोजन का अधिकार

मौलिक अधिकार

1. समानता का अधिकार, कानून के समक्ष समानता, धर्म, वर्ग, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव निषिद्ध करना और रोज़गार के मामलों में अवसर की समानता;
2. भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सभा, संस्थापक या संघ, आंदोलन, आवास और किसी भी पेशे या व्यवसाय का अभ्यास करने का अधिकार (इनमें से कुछ अधिकार राज्य की सुरक्षा, बाहरी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता या नैतिकता के अधीन हैं);
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार, सभी प्रकार के जबरन श्रम, बाल श्रम और मानव तस्कारी निषिद्ध करना;
4. अंत:करण की और धर्म की अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता;
5. किसी भी वर्ग के नागरिकों को अपनी संस्कृति, भाषा या लिपि को सुरक्षित रखने का अधिकार और अल्पसंख्यक-वर्गों का अपनी पसंद की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अधिकार; और
6. मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

t.me/PDFKaAdda

- जल का अधिकार
- शिक्षा का अधिकार
- जहां तक इनके कैदियों पर लागू होने अधिकारों का प्रश्न है, इनके दायरे में मात्र जीवन की आवश्यकताएं जैसे उचित पोषण, कपड़ा, सिर पर छत, पढ़ने, लिखने की सुविधाएं, जेल के नियमों के अनुसार परिवार के सदस्यों और मित्रों के साथ मुलाकात करने का अधिकार शामिल है
- प्रतिष्ठा का अधिकार
- शालीन और उचित गरिमापूर्ण व्यवहार पाने का महिलाओं का अधिकार
- मुकदमे की त्वरित सुनवाई का अधिकार
- हथकड़ी लगाने के विरुद्ध अधिकार
- हिरासत में हिंसा के विरुद्ध अधिकार
- निजता का अधिकार
- कुपोषण से मुक्ति पाने का अधिकार
- सूचना का अधिकार।

रणजीत सिंह ब्रह्मजीत सिंह शर्मा बनाम महाराष्ट्र सरकार मामले में उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि महिलाओं के साथ अन्याय, प्रदूषण, पर्यावरणीय अपकर्ष, कुपोषण, दलितों का सामाजिक बहिष्कार मानवाधिकारों के उल्लंघन के विविध स्वरूप हैं। बेगुनाह होने की धारणा भी मानवाधिकार है।

इसलिए ऐसा देखा जा सकता है कि न्यायिक सक्रियता द्वारा व्यक्ति के अधिकारों का संरक्षण इतना महफूज और पवित्र रहा है कि वह एक ऐसा राष्ट्रीय वातावरण तैयार करने का मुख्य स्रोत रहा है जहां मानव अस्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर बल दिया गया है ताकि उन्हें आम आदमी के मानवाधिकार के अंग के रूप में सम्मानित और विकसित किया जा सके। इतना ही नहीं, संविधान के भाग-4 ने राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत निर्धारित किए हैं जो देश के शासन में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं और कानून बनाने में इन सिद्धांतों को लागू करना राज्य का कर्त्तव्य होगा। न्यायालयों की राय है कि ये निर्देश कल्याणकारी राज्य प्राप्त करने की दिशा में मौलिक अधिकारों के अनुपूरक हैं। उन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता और इसकी बजाए वे एक दूसरे के लिए सहायक और अनुपूरक हैं।

हाल ही में उच्चतम न्यायालय ने एलजीबीटीआई आदि जैसे असहाय समुदायों के अधिकारों की रक्षा में अग्रणी भूमिका निभाते हुए अनेक महत्वपूर्ण निर्णय सुनाए थे। नेशनल लीगल सर्विसेज अथॉरिटी बनाम भारत संघ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने ट्रांसजेंडर लोगों को 'तीसरा लिंग' घोषित किया था और इस बात की पुष्टि की थी कि भारतीय संविधान के अंतर्गत प्रदत्ता मौलिक अधिकार ट्रांसजेंडर लोगों पर समान रूप से लागू होंगे। उच्चतम न्यायालय ने केंद्र और राज्य सरकारों को इनके साथ सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के रूप में व्यवहार करने तथा शैक्षणिक संस्थाओं में दाखिले और सार्वजनिक नियुक्तियों के मामले में इन्हें आरक्षण देने के लिए कदम उठाने का निर्देश दिया था। यह फैसला भारत में लैंगिक समानता की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

उच्चतम न्यायालय ने नवतेज सिंह जोहर बनाम भारत संघ मामले में भारतीय दंड संहिता की धारा 377 पर ऐतिहासिक और सर्वसम्मत

भारतीय संविधान ने अपने नागरिकों को कई अधिकारों की गारंटी प्रदान की, जिन्हें मौलिक अधिकारों के रूप में जाना जाता है, जो संविधान के भाग-III में प्रतिष्ठापित हैं। जीवन जीने का अधिकार, स्वतंत्रता, समानता, गरिमा, भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार के अलावा धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, जिसमें किसी भी धर्म को मानने, आचरण करने और उसका प्रचार करने का अधिकार निहित है, शोषण के विरुद्ध अधिकार और अल्पसंख्यकों के संस्कृति संबंधी अधिकार और शिक्षा संस्थानों की स्थापना का अधिकार, कुछ ऐसे लागू करने योग्य अधिकार हैं, जिनका राज्य द्वारा कार्यकारी कार्रवाई के माध्यम से उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

फैसला सुनाते हुए समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया। उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि लैंगिक आकर्षण या सेक्शुअल ओरिएंटेशन की स्वतंत्रता, गरिमा, निजता, व्यक्तिगत स्वायत्तता और समानता का मूलभूत कारक है और परस्पर सहमति से समान लिंग के दो वयस्कों के बीच अंतरंगता राज्य के वैध चिंता से परे हैं।

मानवाधिकारों के उल्लंघन के बारे बढ़ती चिंता की परिणति मानवाधिकारों के संरक्षण के कानून को मूर्त रूप प्रदान करने में हुई, जिसके तहत राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एनएचआरसी), राज्यों में राज्य, मानवाधिकार आयोग तथा मानवाधिकारों के संरक्षण और इसके अलावा भारतीय गणराज्यों के 44 वर्षों में इससे जुड़ी घटनाओं के लिए मानवाधिकार अदालतों के गठन का प्रावधान किया गया। एनएचआरसी अक्टूबर, 1993 में अस्तित्व में आया। यह अक्टूबर 1991 में मानवाधिकारों के प्रचार और संरक्षण के लिए राष्ट्रीय संस्थाओं पर प्रथम अंतरराष्ट्रीय कार्यशाला के दौरान अंगीकार किए गए पेरिस सिद्धांतों के अनुरूप था और इसकी पुष्टि संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा 20 दिसम्बर 1993 के अपने प्रस्ताव संख्या 48/134 के माध्यम से की गई। यह मानवाधिकारों को प्रोत्साहन और संरक्षण की भारत की चिंताओं का मूर्त रूप है। आयोग के कुछ मुख्य कार्य हैं;

- स्वयं पहल करते हुए या पीड़ित द्वारा अथवा उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्त द्वारा प्रस्तुत की गई याचिका पर निम्नलिखित शिकायत पर जांच करना–
  1. मानवाधिकारों का उल्लंघन अथवा उसके लिए उकसाना, या
  2. सरकारी कर्मचारी द्वारा ऐसे उल्लंघन की रोकथाम में लापरवाही;
- न्यायालय के समक्ष लम्बित मानवाधिकारों के कथित उल्लंघन के संबंध में किसी भी कार्यवाही में उस न्यायालय की स्वीकृति से हस्तक्षेप;
- राज्य सरकार को सूचित करते हुए राज्य सरकार के नियंत्रण वाली किसी भी जेल या किसी भी संस्था, जहां लोगों को

एनएचआरसी अक्टूबर, 1993 में अस्तित्व में आया। यह अक्टूबर 1991 में मानवाधिकारों के प्रचार और संरक्षण के लिए राष्ट्रीय संस्थाओं पर प्रथम अंतरराष्ट्रीय कार्यशाला के दौरान अंगीकार किए गए पेरिस सिद्धांतों के अनुरूप था और इसकी पुष्टि संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा 20 दिसम्बर 1993 के अपने प्रस्ताव संख्या 48/134 के माध्यम से की गई।

हिरासत में रखा गया हो या उपचार, सुधार अथवा संरक्षण के उद्देश्य से रखा गया हो - का दौरा करना, ताकि कैदियों के जीवन की परिस्थितियों का अध्ययन किया जा सके और उस बारे में अनुशंसाएं की जा सकें;

- मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए संविधान, या उस समय लागू किसी भी कानून के द्वारा अथवा उसके अंतर्गत संरक्षण की समीक्षा और उनके कारगर कार्यान्वयन के लिए अनुशंसित उपाय;
- मानवाधिकारों के उपभोग को बाधित करने वाले आतंकवादी कृत्यों सहित कारकों की समीक्षा करना और उचित सुधारात्मक उपायों की सिफारिश करना;
- मानवाधिकारों से संबंधित संधियों और अन्य अंतरराष्ट्रीय उपकरणों का अध्ययन करना और प्रभावी कार्यान्वयन के लिए सिफारिशें करना;
- मानवाधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान का दायित्व ग्रहण करना और उसे बढ़ावा देना;
- समाज के विभिन्न वर्गों में मानवाधिकारों के बारे में साक्षरता का प्रसार करना और प्रकाशनों, मीडिया, संगोष्ठियों और अन्य उपलब्ध साधनों के माध्यम से इन अधिकारों के संरक्षण के लिए उपलब्ध सुरक्षा उपायों के बारे में जागरूकता को बढ़ावा देना;
- मानवाधिकारों के क्षेत्र में काम करने वाले गैर-सरकारी संगठनों और संस्थानों के प्रयासों को प्रोत्साहित करना;
- ऐसे अन्य कार्य जो मानवाधिकारों को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक माने जा सकते हैं।

पिछले 26 वर्षों के दौरान, एनएचआरसी ने देश में गरीबों, वंचितों और पिछड़े वर्गों सहित आम जनता के लिए मानवाधिकारों की रक्षा और उन्हें बढ़ावा देने का प्रयास किया है।

एनएचआरसी के मुख्य कार्यों में से एक मानवाधिकारों के उल्लंघन की शिकायतों की जांच करना है। 1993 में अपनी स्थापना के बाद से, आयोग ने मानवाधिकार उल्लंघन के 18,95,153 मामले दर्ज किए हैं। उनमें से आयोग ने 18,74,002 मामलों का निपटारा किया है। कुल मिलाकर देखा जाए, तो आयोग ने देश भर में 6,815 मामलों में समग्र रूप से 1,81,20,00,026 रुपये (एक सौ इक्यास्सी करोड़ बीस लाख छब्बीस रुपये) के मुआवजे की सिफारिश की है। एनएचआरसी की 99 प्रतिशत से अधिक सिफारिशों का राज्यों द्वारा अनुपालन किया गया है।

एनएचआरसी ने वृद्धों, महिलाओं, बच्चों, ट्रांसजेंडर के अधिकारों, बंधुआ मजदूरी के उन्मूलन, मानसिक स्वास्थ्य और सिलकोसिस जैसे मानवाधिकार के अन्य मामलों पर भी ध्यान केंद्रित किया है। ऐसा शोध अध्ययनों, महत्वपूर्ण मामलों की मौके पर जांच, कार्यशालाओं, संगोष्ठियों, कोर समूहों के गठन, प्रशिक्षण और इंटर्नशिप्स आदि के माध्यम से किया गया है। आयोग ने हिरासत में मौतों, हिरासत में दुष्कर्मों, पुलिस कार्रवाई के दौरान मुठभेड़ में होने वाली मौतों जैसे महत्वपूर्ण मामलों पर भी दिशानिर्देश जारी किए हैं और मौद्रिक मुआवजे के रूप में राहत भी प्रदान की है और साथ ही दोषी सरकारी कर्मचारियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई की भी अनुशंसा की है।

एनएचआरसी ने हाल के नवाचारों के माध्यम से अपनी पहुंच को व्यापक बनाने का प्रयास किया है। इस दिशा में उठाए गए कुछ महत्वपूर्ण कदमों में - एचआरसीनेट पोर्टल के माध्यम से ऑनलाइन शिकायत पंजीकरण, एचआरसीनेट पोर्टल पर अधिकारियों द्वारा सीधे रिपोर्ट्स अपलोड करने का प्रावधान, मामलों का दोहराव टालने के लिए एसएचआरसी को एचआरसीनेट पोर्टल पर साथ लेना, दाखिल रिपोर्ट का फॉलो-अप करने के लिए राज्यों के साथ वीडियो कांफ्रेंसिंग करना, शिकायतों के पंजीकरण के लिए लगभग तीन लाख कॉमन सर्विस सेंटर्स को शामिल करना, वेबसाइट में आमूल-चूल बदलाव करना, जहां सभी मामलों के आदेशों को अपलोड किया जाता है और शिकायतकर्ताओं को शिकायत दर्ज करने में सहायता उपलब्ध कराने वाला एक समर्पित मदद काउंटर शामिल हैं। मानवाधिकार रक्षकों के

t.me/PDFKaAdda

चुनौतियां

भारत के सामाजिक-आर्थिक सांस्कृतिक ढांचे और उसके औपनिवेशिक अतीत ने मानवाधिकारों को बढ़ावा देने और उनकी सुरक्षा के कई प्रयासों के लिए चुनौती प्रस्तुत की है। भारत में निम्नलिखित मामलों में मुख्यत: मानवाधिकारों के अधिकांश उल्लंघन होते हैं;

- पुलिस द्वारा कार्रवाई करने में विफलता
- गैरकानूनी तौर पर हिरासत में लिया जाना
- झूठे मामले में फंसाना
- हिरासत में हिंसा
- गैरकानूनी गिरफ्तारी
- हिरासत में मौतें
- मुठभेड़ में मौतें
- कैदियों का उत्पीड़न; जेल की स्थितियां
- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों पर अत्याचार
- बंधुआ मजदूर; बाल श्रम
- बाल विवाह
- सांप्रदायिक हिंसा
- दहेज हत्या या उसका प्रयास; दहेज की मांग
- यौन उत्पीड़न और महिलाओं का अनादर
- महिलाओं का शोषण
- दिव्यांगों के साथ भेदभाव
- एचआईवी/एड्स ग्रसित लोगों के साथ भेदभाव
- यौनकर्मियों के साथ भेदभाव आदि।

लिए एनएचआरसी का एक समर्पित फोकल प्वाइंट है, जो एचआरडी को उस मामले में सहायता प्रदान करता है, जिसमें वे सरकार की कार्रवाई के कारण परेशानी में हैं।

आम आदमी के मानवाधिकारों के संरक्षण में एनजीओ, एचआरडी और मीडिया ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने वे महत्वपूर्ण मामले उठाए, जिन पर आयोग ने संज्ञान लिया और पीड़ितों को राहत पहुंचाई।

जेलों, कैदियों, वृद्धाश्रमों आदि के हालात को लेकर एनएचआरसी भी चिंतित है। आयोग ने अपने और विशेष प्रतिपादकों के दौरों के माध्यम से जेलों आदि में व्याप्त हालात को देखा और सुधार के उपायों की अनुशंसा की।

सरकारी और गैर सरकारी पक्षकारों का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वे देश के आम आदमी के मानवाधिकारों को उत्कृष्ट रूप से बढ़ावा देने और संरक्षण प्रदान करने के लिए सामंजस्य के साथ कार्य करें और सभी चुनौतियों पर विजय प्राप्त करें।

निष्कर्ष

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि संविधान में निर्धारित सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए भारत ने जन साधारण के मानवाधिकारों के संरक्षण में शानदार भूमिका निभाई है। कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका और एनएचआरसी आदि जैसी स्वायत्त संस्थाओं सभी ने एक ऐसा सामाजिक फ्रेमवर्क तैयार करने में योगदान दिया है, जिसमें सभी के मानवाधिकार सुनिश्चित हों। इस राह में चुनौतियां आएंगी, लेकिन सभी के समन्वित प्रयासों से उनसे निपटा जा सकता है। यह समझना बेहद महत्वपूर्ण होगा कि अधिकारों की बेहतर सुरक्षा तभी होती है, जब हम अपने दायित्वों का पालन करते हैं। अंत में, महात्मा गांधी ने ठीक ही कहा था:

"मैंने अपनी निरक्षर, लेकिन समझदार मां से सीखा था कि सभी अधिकारों की हकदारी और संरक्षण अच्छी तरह निभाए गए कर्त्तव्य से ही संभव होता है। इस प्रकार, जीने का अधिकार केवल तभी हमें प्राप्त होता है जब हम दुनिया में अपनी नागरिकता का कर्त्तव्य पूर्ण करते हैं। इस एक मौलिक कथन से संभवत: पुरुष और महिला के कर्त्तव्यों को परिभाषित करना और हर अधिकार प्राप्त करने से पहले उसे किसी कर्त्तव्य के साथ सम्बद्ध करना काफी आसान हो जाता है। हर दूसरे अधिकार को अनधिकार ग्रहण के रूप में दर्शाया जा सकता है, जो शायद ही इस लायक हो कि उसके लिए लड़ा जाए।" ❑

प्रकाशन विभाग के विक्रय केंद्र

नई दिल्ली	पुस्तक दीर्घा, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड	110003	011-24367260
दिल्ली	हाल सं. 196, पुराना सचिवालय	110054	011-23890205
नवी मुंबई	701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर	400614	022-27570686
कोलकाता	8, एसप्लानेड ईस्ट	700069	033-22488030
चेन्नई	'ए' विंग, राजाजी भवन, बसंत नगर	600090	044-24917673
तिरुअनंतपुरम	प्रेस रोड, नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट	695001	0471-2330650
हैदराबाद	कमरा सं. 204, दूसरा तल, सीजीओ टावर, कवाड़ीगुड़ा, सिकंदराबाद	500080	040-27535383
बेंगलुरु	फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला	560034	080-25537244
पटना	बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ	800004	0612-2683407
लखनऊ	हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, क्षेत्र-एच, अलीगंज	226024	0522-2325455
अहमदाबाद	पीआईबी, अखंडानंद हॉल, तल-2, मदर टेरेसा रोड, सीएनआई चर्च के पास, भद्र	380001	079-26588669

मौलिक अधिकारों और कर्त्तव्यों में संतुलन

डॉ रणवीर सिंह
डॉ ऋतु गुप्ता

यह वर्ष भारत के संविधान को अपनाने का 70वां वर्ष है। एक नवयुगीन भारत के आदर्शों और आकांक्षाओं और हमारे संस्थापक निर्माताओं की दृष्टि संविधान के प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, (भाग III) और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों (भाग IV) में निहित हैं। इन तीनों को संविधान की आत्मा के रूप में वर्णित किया जा सकता है और संस्थापक पीढ़ियों के मौलिक कर्त्तव्यों के साथ मौलिक कर्त्तव्यों (भाग IV-A) पर बाद के भाग के साथ करार दिया जा सकता है।

दुनिया के सबसे लंबे लिखित संविधान में भारत की राजव्यवस्था के बुनियादी ढांचे की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। यह कुछ बुनियादी मूल्यों की नींव पर निर्मित है जिसे हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान में प्रतिष्ठित किया है ताकि भारत के प्रत्येक नागरिक को निष्पक्ष न्याय मिले। संविधान में मौलिक अधिकारों को शामिल किया जाना इसी सोच को बढ़ावा देने का प्रयास है। इसका उद्देश्य राजनीतिक उतार-चढ़ावों से कुछ अनिवार्य अधिकारों का उल्लंघन न हो। ''नागरिकों के अधिकार दुनिया की आम या खास, हर सरकार के खिलाफ उन उन अधिकारों का दस्तावेज़ है जिसके वे हकदार हैं और कोई न्यायोचित सरकार उन्हें इनसे वंचित नहीं कर सकती।'' लेकिन, यह भी पूरी तरह स्पष्ट कर दिया गया है कि :

- इस स्वतंत्रता का उपयोग करते हुए बड़े संयम की आवश्यकता है।
- पूर्ण स्वतंत्रता एक भ्रम है और इसका अस्तित्व अकेले में संभव नहीं है।
- मूल अधिकारों को मूल कर्त्तव्यों से जोड़ना बहुत जरूरी है।

नागरिकों के मन में सरकार के कामकाज को लेकर उदासीनता की बढ़ती प्रवृत्ति से निबटने और विघटनकारी रूझान को रोकने के लिए 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के जरिए इसमें भाग-4क के अंतर्गत एक नये अनुच्छेद 51क को जोड़ कर मूल कर्त्तव्यों की अवधारणा को अपनाया गया। संविधान की उभरकर सामने आने वाली नयी जरूरतों को स्वीकार करे, इसकी आवश्यकता हमेशा से स्वीकार की जाती रही है।

यह सरकार संविधान को अंगीकृत करने के 70वें साल के सिलसिले में किये जा रहे आयोजनों में ग्यारह मूल कर्त्तव्यों के बारे में जागरूकता पैदा करने पर कई पहलों के जरिए अधिक जोर दे रही है। इसके पीछे अंतर्निहित सोच यह है कि मूल कर्त्तव्यों को हर भारतीय के विचारों और कार्यों का अभिन्न अंग बना दिया जाना चाहिए। मूल

डॉ रणबीर सिंह नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी दिल्ली के संस्थापक कुलपति हैं। ईमेल: vc@nludelhi.ac.in
डॉ ऋतु गुप्ता नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी दिल्ली में प्रोफेसर हैं। ईमेल: ritu.gupta@nludelhi.ac.in

अधिकारों का मूल कर्त्तव्यों के साथ संतुलन कायम करना एक संवैधानिक अनिवार्यता है क्योंकि प्रत्येक अधिकार से उसके अनुरूप कर्त्तव्य भी जुड़ा हुआ है। महात्मा गांधी के शब्दों में :

''अधिकारों का असली स्रोत कर्त्तव्य है। अगर हम सब अपने कर्त्तव्यों का पालन करें तो अधिकार हासिल करना मुश्किल नहीं होगा। अगर हम अपने कर्त्तव्यों को पूरा किये बगैर अधिकारों की ओर भागेंगे तो वे भी मृगमरीचिका की तरह हमसे दूर भाग जाएंगे। जितना ही हम उनका पीछा करेंगे, उतना ही दूर वे हमसे चले जाएंगे।''

''मैंने अपनी अनपढ़ लेकिन समझदार मां से यह बात सीखी कि हम जिन अधिकारों की पात्रता और उनके संरक्षण की बात करते हैं वे अपने कर्त्तव्यों को अच्छी तरह से पूरा करने से ही प्राप्त होते हैं। इस तरह हम जीवन के अपने अधिकार के हकदार तक बनते हैं जब हम दुनिया के नागरिक की अपनी जिम्मेदारी पूरी करते हैं। इस एक बुनियादी बयान से शायद यह स्त्रियों और पुरुषों के कर्त्तव्यों की परिभाषा करना और प्रत्येक अधिकार प्राप्त करने से पहले तत्संबंधी दायित्व का निर्वाह करना आसान हो जाता है...।''

मूल कर्त्तव्य वह प्रणाली हैं जिनका उद्देश्य व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक हितों के बीच संतुलन कायम करना है। इन कर्त्तव्यों से कोई सार्वजनिक दायित्व नहीं बढ़ते बल्कि ये व्यक्ति के रूप में नागरिकों पर लागू होते हैं। लेकिन उच्चतम न्यायालय ने एक फैसले में व्यवस्था दी है कि मूल कर्त्तव्य भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने मूल अधिकार और हालांकि अनुच्छेद 51क राज्य को कोई मौलिक कर्त्तव्य नहीं सौंपता लेकिन भारत के प्रत्येक नागरिक के कर्त्तव्य राज्य के सामूहिक कर्त्तव्य हैं-और अनुच्छेद 51क के अर्थ में इसकी प्रवर्तनीयता ही वह पैमाना है जिससे राज्य की कार्रवाई का मूल्यांकन किया जा सकता है। भारत संघ बनाम नवीन जिंदल[7] मामले में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि मूल कर्त्तव्य, मूल अधिकारों की अवधारणा में ही अंतर्निहित हैं और मूल अधिकारों के उपयोग में कुछ प्रतिबंध लगाते हैं।

श्याम नारायण चौकसी बनाम भारत संघ मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि अनुच्छेद 51क(क) के जरिए भारत के प्रत्येक नागरिक को एक जिम्मेदारी सौंपी गयी है जो यह है कि वह राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गान सहित राष्ट्र के आदर्शों और संस्थाओं का सम्मान करें। यही वह मामला था जिसमें भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने थियेटर या सिनेमा हाल में किसी भी फिल्म के प्रदर्शन से पहले राष्ट्रीय गान को प्रस्तुत करना अनिवार्य किया। माननीय उच्चतम न्यायालय ने सभी दर्शकों के लिए राष्ट्र गान की प्रस्तुति के समय खड़ा होना अनिवार्य कर दिया। इस मामले के माध्यम से न्यायालय ने देश प्रेम की अभिव्यक्ति के तरीके का मानकीकरण कर दिया और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51क के पीछे अंतर्निहित भावना को पूरा करने के तरीके और प्रक्रिया की व्यवस्था की दी। एक अन्य मामले में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 51क(घ) के आधार बनाकर कहा कि अगर विधायिका के किसी अधिनियम[9] से अवैध विदेशी नागरिकों को आश्रय और संरक्षण मिल रहा हो तो कोई भी नागरिक इसे न्यायालय से संज्ञान में ला सकता है।

यह सरकार संविधान को अंगीकृत करने के 70वें साल के सिलसिले में किये जा रहे आयोजनों में ग्यारह मूल कर्त्तव्यों के बारे में जागरूकता पैदा करने पर कई पहलों के जरिए अधिक जोर दे रही है। इसके पीछे अंतर्निहित सोच यह है कि मूल कर्त्तव्यों को हर भारतीय के विचारों और कार्यों का अभिन्न अंग बना दिया जाना चाहिए।

इसके अलावा, एक दिलचस्प बात यह भी है कि अनुच्छेद 51क(झ) में (अनुच्छेद 21क के साथ) में राज्य और माता-पिता से बच्चों की शिक्षा के दायित्व को निम्न प्रकार से साझा करने को कहा गया है:

- राज्य नि:शुल्क की व्यवस्था करके
- माता-पिता अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करके

राज्य को अनिवार्य शिक्षा सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी तो सौंपी गयी है लेकिन इसके साथ ही अनुच्छेद 51क(झ) में अपने आश्रितों को स्कूल न भेज पाने वाले माता-पिता या अभिभावकों को दंडित करने का कोई प्रावधान नहीं किया गया है। इसी तरह नागरिकों को राष्ट्रीय ध्वज फहराने का अधिकार अनुच्छेद 51क(ग) के प्रतिबंधों के साथ दिया गया है।

यह गौर करने वाली बात है कि अनेक मामलों में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 51क की रूपरेखा कई तरह से तय की है और लागू की गयी है। विभिन्न न्यायिक फैसलों में मूल कर्त्तव्यों का संदर्भ आने से इनको जैसे बूस्टर डोज मिल गयी है, और

कुछ हद तक इन्हें लागू करवाना संभव हुआ है। हालांकि नागरिकों से कर्त्तव्यों पर पूरी तरह अमल करवाना संभव नहीं है। कुछ स्थितियों में स्वतंत्रता और मूल कर्त्तव्यों पर लगी वैधानिक पाबंदियों के औचित्य पर अदालतों से विचार करने को कहा गया है और ऐसी स्थितियों में मूल कर्त्तव्य प्रासंगिक हो जाते हैं।

अधिकारों पर लगे प्रतिबंधों के औचित्य के संवैधानिक मानदंडों की तुलना कानून की किसी अन्य शाखा में दिये गये औचित्य से नहीं की जा सकती क्योंकि न्यायिक समीक्षा करने वाली अदालत मध्यस्थ की भूमिका निभाती है। ऐसे मामलों में आनुपातिकता का सिद्धांत या वेडनेसबरी रीज़नेबलनेस (प्रशासनिक कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा) वाले तरीके का अनुसरण किया जाता है जिसमें गंभीर रूप से अनौचित्यपूर्ण निर्णयों पर ही न्यायिक हस्तक्षेप किया जाता है।

यहां यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि हमारे संविधान में शामिल किये गये बेहद सराहनीय सिद्धांत और भारत की स्वतंत्रता के बाद अधिनियमित शानदार कानूनों का लाभ समान रूप से सबसे निचले स्तर तक नहीं पहुंचा है और वे आम नागरिकों के जीवन का अभिन्न अंग नहीं बन पाये हैं। उन महान सिद्धांतों के प्रति जागरूकता और संवेदनशीलता का अभाव इसके कुछ कारण हो सकते हैं। इसलिए यह बेहद जरूरी हो जाता है कि देश में ऐसा अनुकूल माहौल तैयार किया जाए जिसमें कर्त्तव्यों का भी प्राथमिकता के आधार पर ध्यान रखा जा सके।

प्रत्येक व्यक्ति को यह याद रखना चाहिए कि अधिकार कर्त्तव्यों और जिम्मेदारियों से ही मिलते हैं। इसलिए बुनियादी तरीका यह होना चाहिए कि ईमानदारी से कार्य किया जाए और लोकतंत्र से मिले अधिकार और कर्त्तव्य दोनों की व्यावहारिक अभिव्यक्ति की जाए। मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा में भी ऐलान किया गया है:

"प्रत्येक व्यक्ति के उस समुदाय के प्रति कुछ कर्त्तव्य होते हैं जिसकी वजह से उसके व्यक्तित्व का स्वतंत्र रूप से और पूर्ण विकास हो पाया है।"

हमारे संविधान में मूल अधिकारों के साथ साथ मौलिक कर्त्तव्यों के बारे में अध्ययन होना नागरिकों को इस बात की याद दिलाता

प्रत्येक व्यक्ति को यह याद रखना चाहिए कि अधिकार कर्त्तव्यों और जिम्मेदारियों से ही मिलते हैं। इसलिए बुनियादी तरीका यह होना चाहिए कि ईमानदारी से कार्य किया जाए और लोकतंत्र से मिले अधिकार और कर्त्तव्य दोनों की व्यावहारिक अभिव्यक्ति की जाए।

है कि वे जिस भी अधिकार का उपयोग करते हैं उसे संतुलित करने के लिए एक कर्त्तव्य को पूरा करना भी आवश्यक है।[14] चूंकि कर्त्तव्यों के बारे में प्रस्तावना में बताया गया है, संविधान में निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए जो कुछ भी करना आवश्यक है वह स्वाभाविक रूप से हमारे कर्त्तव्य है जिसे करने का आदेश हमें प्रस्तावना में दिया गया है।

1999 में न्यायमूर्ति वर्मा समिति ने मौलिक कर्त्तव्यों को और अधिक कारगर बनाने के तौर-तरीके सुझाये थे। बीस साल पहले संविधान के कार्य करने के तरीके की समीक्षा के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग ने जब न्यायमूर्ति वर्मा समिति के सुझावों पर विचार किया था तो उसके समक्ष जो सबसे महत्वपूर्ण सवाल था वह आज भी सबसे बड़ी चुनौती बना हुआ है। और यह सवाल था :

क्या अनुच्छेद 51क ने अपना उद्देश्य पूरा किया है, अगर नहीं तो इस प्रावधान को बनाने वाले लोगों ने अपने नागरिक के रूप में अपने लोकतांत्रिक कर्त्तव्यों के निर्वहन में कहां पर चूक की और अपने साथी नागरिकों को निराश किया।

पर्यावरण, भीड़ की हिंसा और आतंकवाद आदि से संबंधित आज के कई संकटों को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता था अगर लोगों में जीवन के शुरुआती दौर में ही मानवीय मूल्यों का समावेश कर दिया जाता। इससे उनके मन में अपने अधिकारों का उपयोग करने के साथ-साथ मौलिक कर्त्तव्यों को अमल करने की मजबूत बुनियाद तैयार होती।

इस तरह अधिकारों और कर्त्तव्यों के बीच मजबूत संतुलन बनाए रखना बहुत जरूरी है। एक अकेले व्यक्ति का बिना किसी अन्य के न तो कोई अस्तित्व होता है और न कोई अर्थ। दोनों के बीच नाजुक संबंध को लिपमैन के निम्न शब्दों में इस तरह संक्षेप में व्यक्त किया जा सकता है :

"आपके प्रत्येक अधिकार के साथ आपका एक दायित्व भी जुड़ा रहता है जिसे पूरा किया जाना जरूरी है। प्रत्येक आशा के साथ भी एक काम जुड़ा होता है जिसे आपको पूरा करना होता है। ऐसी प्रत्येक भलाई के साथ जो आपके होने की उम्मीद करते हैं, आपको अपने आराम और सुविधा का त्याग करना होता है... कुछ भी बिना कारण नहीं होता।" ❑

संदर्भ

- सिद्धाराम सलिंगप्पा म्हेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 2011 एससी 312
- जेम्स मैडिसन को टॉमस जैफर्सन उत्तर, द बिल ऑफ राइट्स : ए ब्रीफ हिस्ट्री (https://www.aclu.org/other/bill-rights-brief-history पर उपलब्ध। जैन, एम.पी., इंडियन कांस्टीट्यूशनल लॉ, आठवां संस्करण, लेक्सिस नेक्सिस, 2019, 1502 पर। महात्मा गांधी का जूलियन हक्सले को पत्र, 1947 (https://indianexpress.com/article/opinion/columns/all-rights-come-from-duty-well-done/ पर उपलब्ध।
- एआईआईएमएस स्टूडेंट्स यूनियन बनाम एआईआईएमएस (2002) 1 एससीसी 510
- एआइआर 204 एससी 1559 (2017) 1 एससीसी 421.
- इल्लीगल माइग्रेंट्स (डिटरमिनेशन बाई ट्राइब्यूनल्स) एक्ट 1983 अशोक कुमार ठाकुर बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (2008) 6 एससीसी 1
- कानूनी मामला : रामलीला मैदान घटना, 2012 (2) एससीएएलई 682 फंडामेंटल राइट्स एंड ड्यूटीज गो टुगैदर, 26.11.2019 को संविधान दिवस के अवसर पर संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में उपराष्ट्रपति वेंकैया नायडु का भाषण, https://pib.gov.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=k195002 पर उपलब्ध। अनुच्छेद 29(1), यूनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स
- ड्यूटी इज राइट एंड राइट्स आर लेफ्ट : https://www.indiatoday.in/magazine/indiascope/story/19760715-swaran-singh-committee-recommends-new-chapter-on-fundamental-duties-in-the-constitution-819235-2015-04-09 पर उपलब्ध।
- http://legalaffairs.gov.in/sites/default/files/%28V%29Effectuation%20of%20Fundamental%20Duties%20of%20Citizens.pdf
- जस्टिस वर्मा कमीटी ऑन आपरेशनालाइजेशन ऑफ फंडामेंटर ड्यूटीज रिपोर्ट (1999)
- वाल्टर लिपमैन, जिमी कार्टर, पब्लिक पेपर्स आफ द प्रेजीडेंट्स ऑफ यूनाइटेड स्टेट्स, खंड-1, 1978

t.me/PPRKAdda

मौलिक कर्त्तव्यों का उद्देश्य

अनुभव कुमार

राष्ट्र अपने नागरिकों द्वारा बनाया जाता है। महात्मा गांधी का मानना था कि अधिकार का सच्चा स्रोत कर्त्तव्य है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्त्तव्य पूर्ण करता है तो दूसरों के अधिकारों की रक्षा की जाएगी। मौलिक कर्त्तव्य प्रत्येक नागरिक को सतत स्मरण कराता है कि जहां संविधान ने उन्हें कुछ मौलिक अधिकार दिए हैं, वहीं यह अपेक्षा भी की है कि नागरिक लोकतांत्रिक आचरण के मौलिक नियमों का पालन करें।

प्रत्येक अधिकार के साथ कर्त्तव्य भी जुड़ा होता है। जब भी कानून मानता है कि व्यक्ति का यह अधिकार है, तो इसका अर्थ होता है कि इस अधिकार का अनुपालन दूसरे व्यक्ति का वैधानिक कर्त्तव्य है। भारतीय संविधान भाग-III के तहत मौलिक अधिकारों की गारंटी सुनिश्चित करता है और इस प्रकार इन अधिकारों का संरक्षण प्रशासन का दायित्व हो जाता है। दूसरी तरफ संविधान भाग-IVए के तहत कुछ मौलिक कर्त्तव्य भी निर्धारित करता है, जिसका पालन नागरिकों को करना है। मूल रूप से मौलिक कर्त्तव्य संविधान का अंग नहीं थे। पहली बार 1976 में स्वर्ण सिंह समिति की सिफरिशों के बाद संघ के 42वें संशोधन के जरिए इन्हें शामिल किया गया। यह सार्वभौम मानवाधिकार घोषणा के अनुच्छेद 29(1) के अनुरूप है, जो स्पष्ट करता है कि ''प्रत्येक व्यक्ति का समुदाय के प्रति कर्त्तव्य है, जिसमें व्यक्तित्व का उन्मुक्त और पूर्ण विकास संभव है।'' 1976 में भारतीय संविधान में 10 कर्त्तव्यों का उल्लेख शामिल किया गया, 11वें कर्त्तव्य को 2002 में 86वें संशोधन के जरिए जोड़ा गया।

संविधान का भाग IV राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों का प्रावधान करता है। भारतीय संविधान का भाग III, भाग IV और भाग IV, एक साझा तंतु से जुड़ा है। इनमें से पहला मौलिक अधिकारों को स्पष्ट करता है, दूसरा प्रशासन के मौलिक सिद्धांत निर्धारित करता है और तीसरा नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्यों का उल्लेख करता है। इस प्रकार जहां प्रशासन लोगों के मौलिक अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं करने के लिए बाध्य है, वही नागरिकों का भी प्रशासन के प्रति कर्त्तव्य है और उन्हें राष्ट्र निर्माण और सामाजिक हित के लिए योगदान करना है। मौलिक कर्त्तव्यों को शामिल करने का निश्चित रूप से एक उद्देश्य था, लेकिन इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि यह उद्देश्य प्रभावी ढंग से आज तक हासिल नहीं हो सका है। सरकार ने वर्ष 2000 में न्यायमूर्ति एम. एन. वेंकटचलैया की अध्यक्षता में राष्ट्रीय संविधान कार्यान्वयन समीक्षा आयोग (एनसीआरडब्ल्यूसी) गठित किया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट सौंपी, जिसमें मौलिक कर्त्तव्यों के महत्व और क्रियान्वयन पर जोर दिया गया था। वर्मा समिति (1999) ने विशेष रूप से मौलिक कर्त्तव्यों को प्रभावी ढंग से लागू किए जाने के बारे में सुझाव सौंपे थे।

संविधान की विषयवस्तु में कर्त्तव्य की अवधारणा पहले से ही मौजूद है

यद्यपि मौलिक कर्त्तव्यों को 42वें संशोधन के जरिए स्पष्ट रूप से शामिल किया गया, लेकिन नागरिकों के मौलिक अधिकारों के प्रति प्रशासन का दायित्व और सरकार के प्रति नागरिकों का दायित्व संविधान की अवधारणा में पहले से ही मौजूद थे। संविधान के प्रावधानों को ध्यान से पढ़ने से नागरिकों के अधिकार और कर्त्तव्य दोनों स्पष्ट हो जाते हैं। संविधान की प्रस्तावना ''विचार, अभिव्यक्ति, आस्था, धर्म और पूजा की स्वतंत्रता'' की पुष्टि करती है और साथ ही, ''न्याय-सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक'', समानता और भाईचारा सुनिश्चित करना निर्दिष्ट करती है। संविधान राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक पर भारत की सम्प्रभुता के सम्मान और देश की एकता की रक्षा का कर्त्तव्य लागू करता है। जहां एक तरफ मौलिक कर्त्तव्यों पर

मौलिक कर्त्तव्य

लेखक राष्ट्रीय विधि अध्ययन और अनुसंधान विश्वविद्यालय, रांची में तुलनात्मक संविधान के प्राध्यापक हैं। ईमेल: jha.anubhav87@gmail.com

यद्यपि मौलिक कर्त्तव्यों को 42वें संशोधन के जरिए स्पष्ट रूप से शामिल किया गया, लेकिन नागरिकों के मौलिक अधिकारों के प्रति प्रशासन का दायित्व और सरकार के प्रति नागरिकों का दायित्व संविधान की अवधारणा में पहले से ही मौजूद थे। संविधान के प्रावधानों को ध्यान से पढ़ने से नागरिकों के अधिकार और कर्त्तव्य दोनों स्पष्ट हो जाते हैं।

एक नया अध्याय शामिल किया गया, वहीं दूसरी ओर प्रस्तावना में समानता, धर्म निरपेक्षता और अखंडता जैसे शब्द भी शामिल किए गए।

राष्ट्रीय संविधान कार्यान्वयन समीक्षा आयोग ने गौर किया कि संविधान निर्माताओं का मानना था कि प्रत्येक नागरिक इन बुनियादी कर्त्तव्यों का स्वाभाविक रूप से पालन करेगा, इसलिए अलग से उनका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। इसके अलावा प्रस्तावना भी संविधान सभा का उद्देश्य और संकल्प स्पष्ट करती है, जिसमें मूल रूप से कर्त्तव्य निहित हैं। इससे भी बढ़कर संविधान का भाग III, जिसमें मौलिक अधिकारों का उल्लेख है, इन अधिकारों में भी कर्त्तव्य और दायित्व निहित हैं। मौलिक कर्त्तव्यों पर अध्याय शामिल करने से पहले उच्चतम न्यायालय ने 1969 में चन्द्रभवन बोर्डिंग बनाम मैसूर राज्य 1970 एआईआर 2042 मामले में व्यवस्था दी :

''यह सूचना भ्रांति है कि संविधान के अंतर्गत केवल अधिकार दिए गए हैं, कर्त्तव्य नहीं। जहां भाग III के तहत सौंपे गए अधिकार मौलिक हैं, वहीं भाग IV के अंतर्गत नीति निर्देशक सिद्धांत देश के प्रशासन के लिए मौलिक सिद्धांत हैं। हमें भाग III और भाग IV में निहित प्रावधानों के बीच कोई टकराव नजर नहीं आता। ये एक दूसरे के पूरक और प्रतिपूरक हैं। भाग IV के प्रावधान विधायिका और सरकार को नागरिकों पर विभिन्न कर्त्तव्य निर्धारित करने का अधिकार देते हैं। इन प्रावधानों को सोच विचार कर लचीला बनाया गया, क्योंकि नागरिकों के लिए निर्धारित किए जाने वाले कर्त्तव्य नीति निर्देशक सिद्धांत लागू किए जाने की सीमा पर निर्भर करते हैं।''

कर्त्तव्यों का उद्देश्य

राष्ट्र अपने नागरिकों से निर्मित होता है। हेराल्ड लॉस्की ने कहा है कि ''अधिकार कार्यों से जुड़े हैं और केवल कर्त्तव्यपालन के बदले ही दिए जाते हैं।'' हालांकि संविधान निर्माताओं ने कर्त्तव्यों को शामिल करने की आवश्यकता तब नहीं समझी थी, लेकिन बाद में यह जरूरत महसूस की गई। मौलिक कर्त्तव्यों पर गठित न्यायमूर्ति वर्मा समिति ने पाया कि ''समय के साथ साथ मूल्यों का पतन होता गया, विशेषकर सार्वजनिक जीवन में ये बिल्कुल स्पष्ट नजर आया और राष्ट्र को संविधान में संशोधन और प्रत्येक नागरिक के मौलिक कर्त्तव्य के रूप में इन मूल्यों को समाहित करने की आवश्यकता महसूस हुई।'' न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र ने भारत के प्रधान न्यायधीश के नाम पत्र में लिखा ''यदि समाज कर्त्तव्यों पर आधारित होता है, तो भारत में हरेक को कर्त्तव्यों के निवर्हन पर ध्यान देना चाहिए और इसके आधार पर ही किसी नागरिक के अधिकार की पात्रता निर्धारित होनी चाहिए।'' मौलिक कर्त्तव्यों को संविधान में शामिल किया जाना नागरिकों को लगातार यह स्मरण कराना है कि वे उत्तम आदर्शों का पालन करें और उत्कृष्टता के लिए लगातार प्रयास करें।

अनुच्छेद 51ए नागरिकों से क्या अपेक्षा करता है

अनुच्छेद 51ए का अधिदेश अनिवार्य नहीं, बल्कि बाध्यकारी है। यह स्पष्ट करता है कि प्रत्येक नागरिक के कुछ कर्त्तव्य हैं, जिसका उन्हें पालन करना है। इनका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं समझी गई इसलिए इनका उल्लेख नहीं किया गया।

यह नागरिकों से संविधान के पालन तथा ''संविधान के पालन, इसके आदर्शों और इसकी संस्थाओं, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगान के सम्मान'' के प्रति आदरभाव रखने की अपेक्षा रखता है''। भारत ने अनेक संघर्षों के बाद स्वतंत्रता प्राप्त की है और इसलिए ''स्वतंत्रता संग्राम को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों का पालन करना और इनके प्रति सम्मान रखना'' महत्वपूर्ण है। भारत का नागरिक होने के नाते ''देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा'' तथा जब भी आवश्यक हो, ''देश की रक्षा के लिए सेवा अर्पित करना'' प्रत्येक व्यक्ति का पावन कर्त्तव्य है।

धर्म क्षेत्र और भाषायी विविधता वाले देश में नागरिकों से ''आपसी तालमेल और भाईचारे को बढ़ावा देने'' की अपेक्षा है। महिलाओं का इस देश में हमेशा से सम्मान रहा है और इस कर्त्तव्य के उल्लेख की अपेक्षा नहीं है कि प्रत्येक नागरिक को महिलाओं की गरिमा को ठेस पहुंचाने वाली गतिविधियों की भर्त्सना करनी चाहिए। हमारी ''मिलीजुली संस्कृति की समृद्ध विरासत को संरक्षित रखने और सम्मान देने की भी अपेक्षा है। राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के एक भाग के रूप में पर्यावरण संरक्षण तथा वन और वन्यजीवों की सुरक्षा के लिए कानून बनाए जाने चाहिए। इसी के साथ वन, झील, नदियों और वन्य जीवों सहित प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा और संवर्धन तथा जीवों के प्रति करुणाभाव रखना नागरिकों का कर्त्तव्य है।'' नागरिकों के लिए ''वैज्ञानिक अभिरुचि, मानवीयता तथा अन्वेषण और सुधार की भावना विकसित करना भी महत्वपूर्ण है। कई बार, लोग विरोध प्रदर्शनों में सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुंचाते हैं, जो एक नागरिक के रूप में स्वीकार्य कृत्य नहीं है। नागरिकों पर सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा करने और हिंसा से अलग रहने का दायित्व है।''

राष्ट्र अपने नागरिकों के कारण विकसित होता है, इसलिए उन्हें ''व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के प्रत्येक क्षेत्र में उत्कृष्टता के लिए प्रयास करना चाहिए ताकि राष्ट्र उनके हर प्रयास के साथ लगातार उपलब्धियों के उच्चतर स्तर तक पहुंचता रहे।''

नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्यों का निर्वहन सुनिश्चित करना

मौलिक कर्त्तव्यों को लागू कराने का कोई प्रावधान नहीं है और न ही, संविधान के तहत कर्त्तव्यों के उल्लंघन के लिए किसी प्रतिबंध का प्रावधान है। भारत का संविधान न तो प्रतिबंध लगाना चाहता है और न ही, इसे निर्धारित करता है। ये सभी कर्त्तव्य प्रकृति से बाध्यकारी हैं। इसी के साथ साथ भारतीय दंड संहिता, 1860 के तहत प्रावधान हैं, जो देश की संप्रभुता और अखंडता के

खिलाफ गतिविधियों के लिए दंडित करते हैं। भारतीय दंड संहिता में महिलाओं के खिलाफ और सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुंचाने वाली गतिविधियों के लिए भी दंड का प्रावधान है। वन, पर्यावरण और वन्यजीव संरक्षण के लिए भी कानून हैं, लेकिन इन प्रावधानों के इस्तेमाल से पहले प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह देश के कानून के अनुरूप कार्य करे और संवैधानिक नैतिकता को मजबूत करे।

शीर्ष न्यायालय ने ऐम्स विद्यार्थी संघ बनाम एम्स और अन्य एआईआर 2001 एससी 3262 के मामले में व्यवस्था दी :

''अनुच्छेद 51ए के अनुसार मौलिक कर्त्तव्य, मौलिक अधिकारों की तरह किसी अदालती आदेश द्वारा बाध्यकारी नहीं बनाए गए हैं, लेकिन इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि भाग IVए-अनुच्छेद 51ए में उल्लिखित कर्त्तव्य के आगे वही शब्द मौलिक प्रयुक्त किया गया है, जिसे संविधान निर्माताओं ने भाग III में अधिकारों के आगे प्रयुक्त किया है। भारत के प्रत्येक नागरिक का मौलिक रूप से यह कर्त्तव्य है कि वह वैज्ञानिक अभिरुचि और मानवीयता विकसित करे। वह मौलिक रूप से सभी व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के क्षेत्र में उत्कृष्टता हासिल करने के लिए कर्त्तव्यबद्ध है, जिससे राष्ट्र लगातार उपलब्धियों के उच्चतर स्तर तक विकसित होता रहे। देश सभी नागरिकों का समुच्चय है और इसलिए, हालांकि अनुच्छेद 51ए देश के लिए कोई मौलिक कर्त्तव्य अलग से निर्धारित नहीं करता लेकिन यह वास्तविकता बनी रहती है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य देश का सामूहिक कर्त्तव्य है।''

उच्चतम न्यायालय ने भारत बनाम नवीन जिंदल (2004) 2 एससीसी 510 में वर्मा समिति की टिप्पणी पर जोर दिया है:

''व्यक्ति द्वारा कर्त्तव्यों का निवर्हन सामाजिक प्रणाली के निर्देश, व्यक्ति के पर्यावास, रोल मॉडल के प्रभाव के तहत या कानून के दंडात्मक प्रावधानों के परिणाम स्वरूप किया जाता है। नागरिकों द्वारा दायित्वों के अनुपालन के लिए, जहां आवश्यक हो, समुचित विधानों को लागू करना आवश्यक हो जाता है। यदि मौजूदा कानून आवश्यक अनुशासन लागू करने में अपर्याप्त हों, तो कानून संबंधी यह रिक्ति भरी जानी चाहिए। यदि कानून और न्यायिक अधिदेश मौजूद हों, और इसके बावजूद नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्यों का उल्लंघन हो रहा हो, तो कानूनों को प्रभावी बनाने के लिए अन्य रणनीति आवश्यक होगी। वांछित प्रभावकारिता न केवल कानूनी उपायों से बल्कि इसके साथ सामाजिक प्रतिबंधों को जोड़ कर बेहतर ढंग से हासिल की जा सकती है। इसे उदाहरण रखने वालों, रोल मॉडल्स के जरिए और प्रभावी बनाया जा सकता है।''

मौलिक कर्त्तव्य प्रत्येक नागरिक को सतत स्मरण कराता है कि जहां संविधान ने उन्हें कुछ मौलिक अधिकार दिए हैं, वहीं यह अपेक्षा भी की है कि नागरिक लोकतांत्रिक आचरण के मौलिक नियमों का पालन करें।

निष्कर्ष

मौलिक कर्त्तव्य प्रत्येक नागरिक को सतत स्मरण कराता है कि जहां संविधान ने उन्हें कुछ मौलिक अधिकार दिए हैं, वहीं यह अपेक्षा भी की है कि नागरिक लोकतांत्रिक आचरण के मौलिक नियमों का पालन करें। भारतीय समाज के कर्त्तव्यों पर आधारित होने के बावजूद हाल के समय में अधिकारों पर अधिक जोर दिया गया है। भगवत गीता जैसे धर्मग्रंथ कर्त्तव्य करने की बात करते हैं और फल की चिंता नहीं करने का संदेश देते हैं। हालांकि लोके के सामाजिक अनुबंध सिद्धांत के दृष्टिकोण से नागरिक देश से अपेक्षा कर सकते हैं कि वह उसके अधिकारों का संरक्षण करेगा तथा नागरिकों के भी राष्ट्र निर्माण और देश हित में कर्त्तव्य हैं। प्रत्येक पदधारी चाहे वह निर्वाचित हो या नियुक्त, अन्य नागरिकों की तरह अनुच्छेद 51ए के प्रावधानों से बंधा है। वर्मा समिति ने विशेष रूप से कुछ विधानों का उल्लेख किया है, जो मौलिक कर्त्तव्यों का पालन सुनिश्चित कराने के लिए अस्तित्व में हैं। इन कर्त्तव्यों की सूची में अन्य कर्त्तव्य भी शामिल किए जा सकते हैं और नागरिकों से देश के लिए और अधिक करने की अपेक्षा है। भाईचारे की भावना और धर्म निरपेक्ष मूल्यों को और बढ़ावा दिया जाना जरूरी है। देश के प्रत्येक संस्थान में मौलिक कर्त्तव्यों की शिक्षा पाठ्यक्रम और सह-पाठ्यक्रम गतिविधि के रूप में अनिवार्य कर दी जानी चाहिए। देश का कर्त्तव्य है कि वह अपने नागरिकों को उनके कर्त्तव्यों के बारे में शिक्षित करे। अधिकारों और कर्त्तव्यों के बीच एक सही संतुलन बनाया जाना चाहिए और आवश्यक है कि ये केवल संविधान तक ही सीमित न रहे। मौलिक कर्त्तव्यों के बारे में जागरूकता लाने, इन्हें व्यवहार में शामिल करने और क्रियान्वित करने के लिए प्रत्येक उपाय किया जाना चाहिए। ❑

संदर्भ

1. बसु डीडी, 2008, कमेंट्री ऑन द कांस्टिट्यूशन ऑफ इंडिया, वॉल्यूम : III
2. भाटिया, गौतम, राइट्स, ड्यूटीज़ एंड द कांस्टिट्यूशन, द हिंदू, 26 फरवरी 2020
3. https://www.thehindu.com/opinion/lead/rights-duties-and-the-constitution/article30915951.ece
4. देशपांडे वी एस 1973, राइट्स एंड ड्यूटीज़ अंडर द कांस्टिट्यूशन, भारतीय विधि संस्थान की पत्रिका 15(I) पेज 94-108
5. राष्ट्रीय संविधान कार्यान्वयन समीक्षा आयोग रिपोर्ट, http:èèlegalaffairs.gov.inèncrwc-report पर उपलब्ध।

t.me/PDFKaAdda

भारत के संविधान का प्रारूपण

डॉ आर एस बावा

भारत का संविधान देश के सभी कानूनों का जनक है। भारत के तीन स्तंभ (विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका) भी संविधान से अपने अधिकार प्राप्त करते हैं। 1946 की कैबिनेट मिशन योजना के तहत गठित एक संविधान सभा द्वारा इसे तैयार किया गया था। सभा ने डॉ बी आर आंबेडकर की अध्यक्षता में एक मसौदा समिति सहित संविधान तैयार करने के लिए 13 समितियों का गठन किया।

हमारे महान देश के इतिहास में भारत के संविधान का बहुत ही अनूठा स्थान है, क्योंकि इसने संप्रभु गणराज्य भारत का निर्माण किया है। इसका प्रारूपण और अधिनियमन में कई वर्ष लग गए। भारत का संविधान दुनिया में अपनी तरह के सबसे व्यापक और सबसे लंबे दस्तावेज़ों में से एक है। यह भारत का प्रमुख कानून है। इसमें भारत सरकार के शासन के बारे में पूरी बारीकी से ब्यौरा दिया गया है। भारत में स्वतंत्रता से पहले, दो सरकारें थीं- ब्रिटिश सरकार और रियासतें। संविधान ने औपचारिक रूप से इस अंतर को समाप्त किया और संघीय भारत का निर्माण किया। भारत का संविधान देश के सभी कानूनों का जनक है। ऐसा इसलिए है क्योंकि संसद और राज्य विधानमंडल के सभी कानून, संविधान से अपने अधिकार प्राप्त करते हैं। भारत के तीन स्तंभ (विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका) भी संविधान से अपने अधिकार प्राप्त करते हैं। भारत देश को इतनी अच्छी तरह से चलाने के लिए संविधान के बिना कोई अन्य प्रशासनिक व्यवस्था नहीं हो सकती थी।

इतिहास

हमारे संविधान का इतिहास बहुत ही रोचक है, क्योंकि यह बताता है कि हमारे देश ने लोकतंत्र के संसदीय स्वरूप को कैसे और क्यों चुना। ब्रितानी, व्यापार के उद्देश्य से 17 वीं शताब्दी में भारत आए। इसके बाद, उन्होंने धीरे-धीरे अधिक शक्ति प्राप्त की। बाद में, उन्होंने राजस्व संग्रह करने और स्व-शासन के अधिकार हासिल कर लिए। ऐसा करने के लिए, उन्होंने विभिन्न कानून, नियम और विनिमय बनाए। 1833 के चार्टर अधिनियम के साथ, बंगाल का गवर्नर जनरल भारत का गवर्नर जनरल बन गया। एक केंद्रीय विधानमंडल बनाया गया जिसने ब्रितानियों को भारत का सर्वोच्च शासक बना दिया। भारत सरकार अधिनियम 1858 के अधिनियमन के साथ कंपनी का शासन अंततः समाप्त हो गया। नतीजतन, ब्रिटिश राज भारत का शासक बन गया और उसने अपनी सरकार के माध्यम से हमारे देश पर शासन करना शुरू कर दिया।

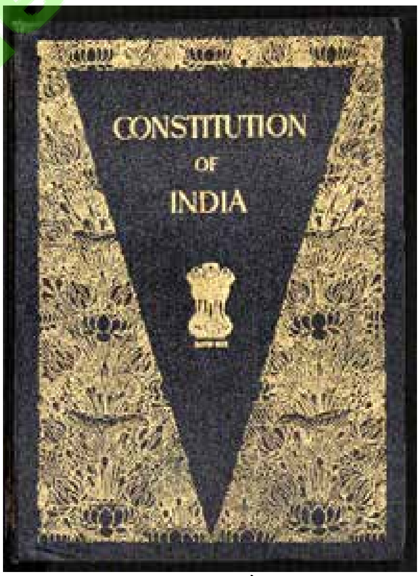

स्रोतः *www.doj.gov.in*

1861, 1892 और 1909 के भारतीय परिषद अधिनियमों ने वायसराय की परिषदों में भारतीयों को प्रतिनिधित्व देना शुरू किया। तत्पश्चात, ब्रितानियों ने कुछ प्रांतों (राज्यों) में विधायी अधिकार बहाल किए। उन्होंने केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों के विकेंद्रीकरण को अपनाया। बाद में, भारत सरकार अधिनियम 1919 के अधिनियमन के साथ, सभी राज्यों में विधान परिषदें अस्तित्व में आईं। ब्रिटिश शासन ने अलग केंद्र और राज्य सरकारों के साथ द्विसदनीय संरचना को अपनाया। यह पहली बार था जब लोग प्रत्यक्ष चुनाव के माध्यम से अपने प्रतिनिधियों का चुनाव कर सकते थे। बाद में भारत के संविधान ने शासन के इस अर्ध-संघीय और द्विसदनीय ढांचे को अपनाया।

भारत सरकार अधिनियम 1935 का अधिनियमन संविधान के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक था क्योंकि इस कानून ने शासन की शक्तियों को संघीय

लेखक चंडीगढ़ विश्वविद्यालय, मोहाली के वाइस चांसलर हैं। ईमेलः vc@cumail.in

संविधान सभा द्वारा पारित, भारत के संविधान पर हस्ताक्षर करने वाले संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ राजेन्द्र प्रसाद

सूची, प्रांतीय सूची और समवर्ती सूची में विभाजित किया था। बाद में, भारत के संविधान ने भी केंद्र और राज्य सरकारों के बीच शक्तियों के इस विभाजन को शामिल किया। इस अधिनियम ने प्रांतों को स्व-शासन के लिए अधिक स्वायत्तता प्रदान की। इसने संघीय न्यायालय की स्थापना भी की थी जिसे अब भारत का सर्वोच्च न्यायालय कहा जाता है।

1947 के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के अधिनियमन ने भारत से ब्रितानियों की विदाई में अंतिम चरण को चिह्नित किया। यह कानून बनने के बाद हमारा देश एक स्वतंत्र और संप्रभु राष्ट्र बन गया। इस अधिनियम ने वास्तव में संविधान सभा की नींव रखने के अलावा केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों की स्थापना की।

संविधान सभा

मई 1946 की कैबिनेट मिशन योजना के प्रावधानों के अनुसार भारत की संविधान सभा अस्तित्व में आई। इसका प्रमुख कार्य संप्रभु सत्ता को ब्रिटिश अधिकारियों से भारतीय हाथों में हस्तांतरण में मदद करना था। संविधान सभा में मौजूदा प्रांतीय विधानसभाओं और विभिन्न रियासतों से आनुपातिक प्रतिनिधित्व दिया जाना था। गवर्नर जनरल के अधीन सुधार कार्यालय की देखरेख में 1946 के अंत तक चुनाव संपन्न हुए। प्रांतीय विधानसभाओं के सदस्यों ने अप्रत्यक्ष रूप से संविधान सभा के सदस्यों को चुना। इस संविधानसभा ने भारत की पहली संसद के रूप में कार्य किया। इसकी पहली बैठक 9 दिसंबर, 1946 को दिल्ली में हुई और एक ऐतिहासिक यात्रा की शुरुआत हुई जिसमें भारत के स्वतंत्रता प्राप्त करने और अपने राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय प्रतीक तथा राष्ट्रगान के बारे में निर्णय लिए गए थे। आजादी के बाद, संविधानसभा ने डॉ राजेंद्र प्रसाद को अपना अध्यक्ष चुना जबकि वी. टी. कृष्णमाचारी और एच. सी. मुखर्जी ने उपाध्यक्ष का पद संभाला। एच. वी. आर. अयंगर संविधानसभा के महासचिव थे और एस. एन. मुखर्जी इसके मुख्य प्रारूपकार थे। डॉ बी आर आंबेडकर को मसौदा समिति का अध्यक्ष बनाया गया, जिन्हें अक्सर भारतीय संविधान का जनक कहा जाता है। इस प्रकार संविधान का प्रारूप तैयार करने का काम शुरू हुआ।

संविधान सभा ने संविधान के निर्माण में कई गैर-सदस्यों की मदद भी ली। संविधानसभा के बाहर प्रख्यात हस्तियों से अनुरोध किया गया था कि वे विशिष्ट विशेषताओं पर केंद्रित विचार-विमर्श के लिए संविधानसभा द्वारा गठित समितियों के सदस्यों के रूप में समय-समय पर काम करें। प्रक्रियात्मक और महत्ता दोनों दृष्टियों से संविधान निर्माण का अधिकांश कार्य इन समितियों की बैठकों में हुआ। हालांकि, संविधान सभा द्वारा गठित समितियों की सही संख्या पर सार्वजनिक रूप से कोई आधिकारिक दस्तावेज़ नहीं है। जरूरत के अनुसार समितियों के गठन के लिए प्रस्ताव लाए गए और सावधानीपूर्वक चर्चा के बाद इन्हें स्वीकार किया गया। विभिन्न समितियों के सदस्यों के नामांकन / चुनाव की तत्परता के आधार पर, प्रस्ताव को स्वीकृति दिए जाने के बाद उनकी औपचारिक नियुक्ति में केवल कुछ घंटे / दिन लगे। फरवरी 1948 में संविधान मसौदे के बारे में टिप्पणी प्राप्त करने के बाद भविष्य की कार्रवाई के बारे में निर्णय लेने के लिए एक विशेष समिति का गठन किया गया था। ऐसा नहीं लगता कि इस विशेष समिति के गठन और इस महत्वपूर्ण समिति का गठन कैसे तथा क्यों किया गया था, इस बारे में कोई प्रस्ताव दिया गया था। 10-11 अप्रैल, 1948 को पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में विशेष समिति की बैठक में बत्तीस सदस्यों ने भाग लिया। दो साल से अधिक समय तक विचार-विमर्श के बाद, संविधान सभा ने आखिरकार 26 नवंबर, 1949 को संविधान को मंजूरी दे दी, जिसे अब संविधान दिवस के रूप में मनाया जाता है। संविधान सभा ने औपचारिक रूप से हमारे देश को एक संप्रभु गणराज्य बनाने के लिए 26 जनवरी 1950 को संविधान को औपचारिक रूप से लागू किया।

भारत का संविधान हमारी विविध आबादी की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला एक अनूठा और सबसे व्यापक दस्तावेज़ है। इसने, देश की सरकार के अधिकारों का प्रयोग कैसे किया जाना चाहिए, इस बारे में विभिन्न सिद्धांतों और कानूनों को बहुत खूबसूरती से निर्धारित किया है। भारत विविध संस्कृतियों तथा नागरिकों वाला राष्ट्र है और यही कारण है कि प्रारूप समिति ने मसौदे को तैयार करने में इतना लंबा समय लिया। हमारे संविधान के ऐतिहासिक विकास का पता इस लेख में उल्लिखित कई तथ्यों से लगाया जा सकता है। हमारा संविधान विभिन्न राष्ट्रों के संविधानों से प्रेरित है और इसमें निहित भावना वर्षों से विधिवत रूप से बरकरार है। ❑

t.me/PDFKaAdda

अदालती निर्णयों में संवैधानिक सुधारः पहला संविधान संशोधन

एन एल राजा

हमारे संविधान के कुछेक संशोधनों का ही आम आदमी पर उतना व्यापक प्रभाव हुआ है, जितना पहले संशोधन का है। इसी कारण इस पर हमेशा ही जमकर चर्चा होनी चाहिए, विचार-विमर्श होना चाहिए और समय-समय पर जरूरत के मुताबिक इसका इस्तेमाल होना चाहिए या इससे अपनाया जाना चाहिए।

भारत के संविधान में पहला संशोधन निस्संदेह एक महत्वपूर्ण क्षण था। लेकिन इससे रोचक प्रश्न खड़े हो गए। जब इतने सोच-विचार तथा गंभीरता के साथ ऐसा विराट संविधान बनाया गया हो और देश में सबसे मेधावान लोगों ने इसकी रचना की हो तो इतनी जल्दी इसमें संशोधन करना अनिवार्य कैसे हो गया?

इसकी जरूरत उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय के कुछ फैसलों के कारण हुई, जिन फैसलों में संविधान की ऐसी व्याख्या की गई, जो सत्तारूढ़ वर्ग द्वारा की गई व्याख्या से अलग थी या वैसी नहीं थी, जैसी व्याख्या वह वर्ग चाहता था।

पत्रकार रोमेश थापर ने अपने अंग्रेजी साप्ताहिक 'क्रॉसरोड्स' के प्रकाशन पर लगे प्रतिबंध को चुनौती दी। इसी तरह दिल्ली में एक प्रकाशन पर कथित रूप से धार्मिक भावनाओं को चोट पहुंचाने के कारण प्रतिबंध लगा दिया गया, जिसे अदालत में चुनौती दी गई। (बृज भूषण एवं अन्य बनाम दिल्ली राज्य)[1] बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर इन प्रतिबंधों को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई। सर्वोच्च न्यायालय ने बहुचर्चित रोमेश बनाम मद्रास राज्य[2] मामले में स्पष्ट शब्दों में कहा कि 'सार्वजनिक व्यवस्था' बनाए रखना अनुच्छेद 19(2) के अंतर्गत बोलने की स्वतंत्रता के अपवादों में शामिल नहीं है।

अदालत ने भूमि सुधार के क्षेत्र में भी कार्यपालिका से भिन्न रुख अपनाया। जमींदारी से होने वाला शोषण खत्म करने के लिए कुछ राज्यों ने जमींदारों को कम मुआवजा देकर उनकी जमीन ले ली। कुछ उच्च न्यायालयों ने इन कदमों को असंवैधानिक करार दिया, जिनमें कामेश्वर सिंह बनाम बिहार राज्य[3] मामले में पटना उच्च न्यायालय का फैसला विशेष रहा। उच्च न्यायालय ने 12 मार्च, 1951 को निर्णय दिया कि बिहार भूमि सुधार अधिनियम गैर कानूनी है क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है। अदालत ने कहा कि अनुच्छेद 14 कानून के तहत समान सुरक्षा की गारंटी देता है, इसलिए यह अपेक्षाकृत धनी जमींदारों के साथ भेदभाव की अनुमति नहीं देता। कुल मिलाकर उन्होंने कहा कि जमीन गरीब व्यक्ति से ली गई हो या जमींदार से, मुआवजा एक बराबर दिया जाना चाहिए।

सभी मामलों में जिन प्रावधानों पर विवाद था या वे प्रावधान जिन कानूनों में थे, वे अलग-अलग थे। उदाहरण के लिए रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य[4] में मद्रास मेंटेनेंस ऑफ पब्लिक ऑर्डर 1949 के प्रावधानों को चुनौती दी गई थी। बृज भूषण बनाम दिल्ली राज्य[5] में पूर्वी पंजाब जन सुरक्षा अधिनियम, 1949 से संबंधित प्रावधानों को चुनौती दी गई थी। लेकिन इन सभी मामलों में उच्चतम न्यायालय ने जिस सबसे अहम बिंदु पर बात की, वह था कि ये प्रावधान संवैधानिक रूप से वैध थे या नहीं? सर्वोच्च न्यायालय के अधिकतर फैसलों में विवादित प्रावधानों को रद्द कर दिया गया। ऐसा करते हुए उन्होंने 'अतिक्रमण' के सिद्धांत का हवाला दिया। अदालत ने कहा कि 'सार्वजनिक व्यवस्था' का अर्थ जनता के बीच शांति होता है और सुरक्षा के लिए खतरा बनने या सरकार का तख्तापलट करने का प्रयास करने का अर्थ ऐसे कृत्यों से है, जो राज्य की नींव ही हिला सकते हैं। इसीलिए उसने कहा कि सरकार को कमजोर बनाने वाले या तख्तापलट का प्रयास करने वाले कृत्य सार्वजनिक व्यवस्था तो बिगाड़ेंगे, लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता कि सार्वजनिक व्यवस्था के विरुद्ध कृत्यों से राज्य की सुरक्षा खतरे में पड़ेगी। इसका मतलब था कि विवादित कानूनों ने उन गतिविधियों पर रोक लगाई, जिन पर रोक लगाने का अधिकार अनुच्छेद 19(2) के अंतर्गत सरकार को मिला है और उन पर भी रोक लगाई, जिन पर कानूनन रोक नहीं लगाई जा सकती। अदालत ने कहा कि ऐसे मामलों में 'अतिक्रमणकारी' कानून बनाए

लेखक मद्रास उच्च न्यायालय में वरिष्ठ अधिवक्ता हैं। ईमेलः nlrajah.advocate@gmail.com

गए हैं, इसलिए वे कानून असंवैधानिक हैं।

रोमेश थापर[6] और बृज भूषण[7] मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि कानूनों के विवादित प्रावधानों ने 'पहले से ही प्रतिबंध लगाने' की व्यवस्था थोप दी थी। अदालत ने कहा कि विवादित प्रावधानों ने सरकार को सार्वजनिक व्यवस्था की आशंका में अखबारों का वितरण निषिद्ध करने का अधिकार दे दिया। उसने कहा कि उन्होंने बोलने का अवसर देने से पहले ही आवाज को दबा दिया। सामान्य कानून में प्रचलित परंपरा और अमेरिकी संवैधानिक न्यायशास्त्र को इस्तेमाल करते हुए अदालत ने कहा कि अग्रिम प्रतिबंध लगाने वाले कानून पर अपना संवैधानिक औचित्य प्रदर्शित करने की जिम्मेदारी होती है।

इन फैसलों के कारण जवाहरलाल नेहरू को लगा कि न्यायपालिका कार्यपालिका की शक्तियों में अनपेक्षित हस्तक्षेप कर रही है। उन्होंने अदालत को याद दिलाया कि, ''यदि अदालतें संविधान की व्याख्या इस तरह करेंगी कि वह बुनियादी सामाजिक मामलों में विधायिका की इच्छा के रास्ते में आएगी तो विधायिका को सोचना पड़ेगा कि संविधान में किस प्रकार संशोधन किया जाए कि विधायिका में प्रतिनिधि के नाते लोगों की इच्छा सर्वोपरि रहे।''

उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों के खिलाफ संसद के इस सामूहिक आक्रोश के कारण ही हमारे संविधान में पहला संशोधन किया गया।

यहां उन अनूठी परिस्थितियों को याद करना ठीक रहेगा, जिनमें पहले संशोधन का प्रस्ताव रखा गया। हमें याद रखना होगा कि हमारे द्वारा अंगीकृत संविधान के अंतर्गत जो चुनाव होने थे, वे 1951 के अंत तक नहीं हुए थे। इसीलिए संशोधन के आलोचकों ने संसद पर आरोप लगाया कि उसके पास संशोधन करने के लिए प्रतिनिधित्व की क्षमता ही नहीं थी। लेकिन संसद के संविधान में संशोधन के अधिकार पर संदेह नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह था कि 1947 के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत संविधान सभा को नए संविधान के लागू होने तक विधायिका के रूप में बैठने और अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करने का अधिकार प्राप्त था। इसीलिए संविधान संशोधन पर बहस उन्हीं लोगों ने की, जिन्होंने संविधान बनाया था!

सुझाए गए संशोधनों पर संसद में गरमागरम बहस हुई, जो मोटे तौर पर दो बिंदुओं पर थी। पहला सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसलों को पलटने के संसद के अधिकार से संबंधित था और दूसरा सुझाए गए बदलावों के गुण-दोष पर था।

16 दिनों की तीखी बहस और विचार-विमर्श के बाद पहला संशोधन पारित हो गया, जो खास तौर पर अनुच्छेद 19 के बारे में नेहरू द्वारा प्रस्तावित संशोधन का बहुत हल्का प्रारूप था। विभिन्न पार्टियों और सांसदों द्वारा की गई बहस और उनके रुख का पूरा ब्योरा 'सिक्सटीन स्टॉर्मी डेज़: द स्टोरी ऑफ द फर्स्ट अमेंडमेंट टु द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इंडिया'[8] पुस्तक में दिया गया है, जो बहुत रोचक है। पहले संशोधन में जुड़ा आपत्तियों और कारणों का विवरण सरकार की चिंता को सटीक तरीके से अभिव्यक्त करता है। उनमें कहा गया है:

''संविधान लागू होने के बाद पिछले 15 महीनों में विशेष रूप से मौलिक अधिकारों पर अध्याय के बारे में न्यायिक फैसलों के कारण कुछ कठिनाइयां सामने आई हैं। नागरिकों को अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत मिले वाणी एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को कुछ अदालतों ने इतना व्यापक मान लिया है कि उन्होंने हत्या और अन्य हिंसक अपराधों का समर्थन करने वाले व्यक्ति को भी दोषी नहीं माना है। लिखित संविधान वाले अन्य देशों में वाणी एवं प्रेस की स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं माना जाता कि इस आजादी के दुरुपयोग पर राज्य सजा नहीं दे सकता या दुरुपयोग को रोक नहीं सकता। अनुच्छेद 19 (1) (जी) के तहत नागरिकों को मिले कोई पेशा या व्यवसाय, व्यापार या कारोबार करने के अधिकार पर भी कुछ प्रतिबंध हैं, जिन्हें राज्य का कानून 'आम जनता के हित' में लगा सकता है। ये शब्द इतने व्यापक हैं कि राज्य द्वारा चलाई जा रही राष्ट्रीयकरण की कोई भी योजना इनके दायरे में आती है, लेकिन अनुच्छेद 19(6) में एक स्पष्टीकरण जोड़कर इस संबंध में हर प्रकार का संदेह मिटा देना उचित है। अनुच्छेद 31 के संबंध

में भी अप्रत्याशित कठिनाइयां खड़ी हो गई हैं। पिछले तीन वर्ष में राज्य विधायिकाओं द्वारा पारित किए गए कृषि संबंधी उपायों ने अनुच्छेद 31 के प्रावधान (4) और (6) के बावजूद व्यर्थ के मुकदमें शुरू हो गए। इस कारण भारी संख्या में लोगों को प्रभावित करने वाले इन महत्वपूर्ण उपायों का क्रियान्वयन रोक दिया गया। इसीलिए इस विधेयक का मुख्य उद्देश्य ऊपर बताए गए उद्देश्यों के लिए अनुच्छेद 19 में संशोधन करना और सामान्य तौर पर एवं राज्य विशेष के कानूनों में जमींदारी उन्मूलन कानूनों को पूर्ण संवैधानिक वैधता प्रदान करना था। मौके का फायदा उठाकर कुछ अन्य अनुच्छेदों में भी छोटे-मोटे संशोधनों का प्रस्ताव रखा गया ताकि आगे आने वाली कठिनाइयां दूर की जा सकें।''

इस प्रकार प्रथम संशोधन अधिनियम से अनुच्छेद 15, 19, 85, 87, 174, 176, 341, 342, 372 और 376 में संशोधन कर दिए गए। इसके जरिये अनुच्छेद 31ए और 31बी जोड़े भी गए।

इस संशोधन में अनुच्छेद 31बी के माध्यम से संविधान की नवीं अनुसूची भी जोड़ी गई। ध्यान रहे कि उस समय संविधान के अंतर्गत अधिकारों के 7 समूहों की गारंटी दी गई थी। ये अधिकार थे:

समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, संपत्ति का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार तथा संवैधानिक उपायों का अधिकार।

किंतु 44वें संविधान संशोधन (1978) के जरिये संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची से हटा लिया गया और सामान्य कानूनी अधिकार के रूप में नए अनुच्छेद 300ए में रख दिया गया। इस तरह अब अधिकारों के केवल 6 समूह रह गए हैं।

नवीं अनुसूची में शामिल किसी भी कानून की न्यायिक समीक्षा नहीं हो सकती चाहे वह असंवैधानिक ही क्यों न हो और मौलिक अधिकारों का हनन ही क्यों नहीं करता हो। भूमि सुधार को लागू करने वाले 13 कानूनों की सूची में अब 282 कानून शामिल हो चुके हैं, जो राष्ट्रीयकरण, मुद्रा नियंत्रण, मूल्य एवं गुणवत्ता नियंत्रण तथा आपातकाल को लागू करने में मदद करते हैं।

पहले संशोधन द्वारा जोड़े गए प्रावधानों पर न्यायपालिका में जमकर विचार हुआ है और फैसले दिए गए हैं। संशोधित अनुच्छेद 19(2) की पहली व्याख्या सर्वोच्च न्यायालय ने रामजी लाल मोदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[9] मामले में की थी। हमने देखा कि रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य[10] मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने किस तरह मुखर होकर वाणी एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा की थी। पहले संशोधन में शामिल किए गए बदलावों के बाद अदालत की स्थिति बहुत कमजोर हो गई, जो रामजी लाल मोदी मामले में आए फैसले से स्पष्ट हुई। मामले में भारतीय दंड संहिता की धारा 295ए को चुनौती दी गई थी। यह धारा किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओं को आहत करने की मंशा से धार्मिक आस्थाओं का अपमान करने को अपराध करार देती है। चुनौती में अतिक्रमण वाली दलील दी गई थी: तर्क दिया गया कि धार्मिक आस्थाओं का अपमान करने की कुछ घटनाओं से सार्वजनिक व्यवस्था भंग होगी, लेकिन सभी से ऐसा नहीं होगा, इसलिए यह धारा असंवैधानिक है। अदालत ने इस दलील को खारिज कर दिया और धारा को बरकरार रखा। अदालत ने यहां तक कहा कि धार्मिक भावनाओं को आहत करने के इरादे से जानबूझकर की गई टिप्पणी अथवा अभिव्यक्ति का उद्देश्य वास्तव में सार्वजनिक व्यवस्था बिगाड़ना होता है, इसलिए धारा असंवैधानिक नहीं है।

मगर पिछले कुछ दशकों में अदालतों ने वाणी एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के रखवाले की अपनी भूमिका को अधिक प्रभावी तरीके से निभाना शुरू कर दिया है। एस. रंगराजन बनाम पी. जगजीवन राम मामले[11] में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिव्यक्ति और उसके कारण सार्वजनिक व्यवस्था भंग होने की संभावना को 'बारूद के ढेर में चिंगारी' की तरह बताया। हाल ही में अरूप भुइयां बनाम असम राज्य मामले[12] में अदालत ने कहा कि किसी प्रतिबंधित संगठन की सदस्यता को अपराध करार देने वाले टाडा के प्रावधान तभी लागू हो सकते हैं, जब व्यक्ति हिंसा भड़काने के लिए जिम्मेदार हो।

श्रेया सिंघल बनाम भारत संघ मामले[13] में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 66ए को रद्द करते हुए अदालत ने वाणी एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के संरक्षक की अपनी संवैधानिक भूमिका एक बार फिर पुरजोर तरीके से सिद्ध की। धारा 66ए में प्रशासन को अधिकार मिला था कि वह कंप्यूटर या किसी अन्य संचार उपकरण के जरिये 'अप्रिय' संदेश भेजने वाले को दंडित कर सकता है। अदालत ने प्रावधान समाप्त करते हुए कहा, ''इसीलिए हमारा निर्णय है कि धारा इस आधार पर भी असंवैधानिक है कि यह संरक्षा के दायरे में आने वाली वाणी एवं निर्दोष वाणी का भी अतिक्रमण कर लेती है तथा इसे मुक्त वाणी पर दुष्प्रभाव डालने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इसीलिए अतिक्रमणकारी होने के आधार पर इसे रद्द करना ही होगा।''

इसलिए अदालत ने 'अतिक्रमण या दायरे से बाहर जाने' के जिस सिद्धांत की मदद से रोमेश थापर मामले में प्रावधान रद्द किए थे, उसी सिद्धांत ने पहले संशोधन के बावजूद सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 66ए रद्द करने में अदालत की मदद की।

हमारे संविधान के कुछेक संशोधनों का ही आम आदमी पर उतना व्यापक प्रभाव हुआ है, जितना पहले संशोधन का है। इसी कारण इस पर हमेशा ही जमकर चर्चा होनी चाहिए, विचार-विमर्श होना चाहिए और समय-समय पर जरूरत के मुताबिक इसका इस्तेमाल होना चाहिए या इससे अपनाया जाना चाहिए। ❑

संदर्भ

1. 1950 एआईआर 129, 1950 एससीआर 605
2. 1950 एआईआर 124, 1950 एससीआर 594
3. एआईआर 1951 पटना 91 (एसबी) (ए)
4. उपरोक्त
5. उपरोक्त
6. उपरोक्त
7. उपरोक्त
8. ''सिक्सटीन स्टॉर्मी डेज़: द स्टोरी ऑफ द फर्स्ट अमेंडमेंट टु द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इंडिया'', त्रिपुरदमन सिंह
9. 1957 एआईआर 620, 1957 एससीआर 860
10. उपरोक्त
11. 1989 एससीआर (2) 204, 1989 एससीसी (2) 574
12. इंडियन कानून - http://indiankanoon.org/doc/792920/
13. श्रेया सिंघल बनाम भारत संघ (2015) 5 एससीसी 1

भारतीय संसद – कार्यनिष्पादन और चुनौतियां

एम आर माधवन

संसद प्रतिनिधित्व शासन प्रणाली में केंद्रीय भूमिका निभाती है, जिसका प्रभाव नागरिकों के जीवन के हर पहलू पर पड़ता है। लगभग 70 वर्षों के दौरान संसद ने उल्लेखनीय कार्य किया है, संभवतः सर्वाधिक विविधता वाले देश में आंतरिक तनावों के प्रबंधन में मदद की है। अनेक सामाजिक सुधारों और आर्थिक प्रगति की आधारशिला संसद ने रखी है। हालांकि ऐसे अनेक उपाय हैं, जिनके द्वारा संसद की प्रभावशीलता और बढ़ाई जा सके। इनमें दल बदल विरोधी कानून को समाप्त करना, सांसदों का मतदान रिकॉर्ड करना अनिवार्य बनाना और समिति प्रणाली को और मजबूत करना शामिल है।

देश की केंद्रीय विधायी संस्था के रूप में संसद की 4 मुख्य भूमिकाएं हैं - यह कानून बनाती है, कार्यों के प्रति कार्यकारी की जवाबदेही तय करती है, सरकारी वित्त का आवंटन करती है और नागरिकों के हितों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती है। संसद भी इन अर्थों में एक संवैधानिक निकाय है, क्योंकि यह संविधान में संशोधन कर सकती है।

संसद की कार्य प्रणाली

कई वर्षों से संसद की बैठक काफी कम दिनों के लिए हो पा रही है। चित्र-1 दर्शाता है कि 1950 के दशक में संसद की बैठकों की संख्या 125-140 से घट कर पिछले 20 वर्षों में लगभग 70 दिन रह गई है। संसद की कार्यवाही में बाधा से संसद में बहस के लिए उपलब्ध समय में भी कमी आई है। 15वीं लोकसभा के दौरान निर्धारित समय का एक तिहाई हिस्सा बाधाओं की भेंट चढ़ गया। (चित्र-2)

प्रश्नकाल में बाधा एक बड़ी हानि है। यदि सदन की कार्यवाही बाधित होती है, तो इसे देर तक काम करके या भोजनावकाश में काम करके समय के नुकसान की भरपाई करनी होती है, लेकिन प्रश्नकाल के समय के नुकसान की भरपाई नहीं हो पाती। परिणामस्वरूप मौखिक उत्तर के लिए सूचीबद्ध प्रश्नों के लिए केवल कुछ के ही उत्तर सदन में दिए जाते हैं और शेष का लिखित उत्तर मिल पाता है। (चित्र-3)

समय के अभाव से विधेयक पर बहस भी प्रभावित होती है। प्रत्येक विधेयक को पेश किए जाते समय, विचार-विमर्श के दौरान प्रत्येक खंड पर विस्तृत बहस और पारित किए जाने के तीन अवसरों से गुजरना होता है। संसद में पहले और तीसरे चरण में किसी विधेयक पर मुश्किल से बहस होती है। कई विधेयकों पर विचार-विमर्श के चरण में भी बहस नहीं हो पाती। हालांकि पिछले 5 वर्ष में रिकार्ड में सुधार हुआ है (चित्र-4)

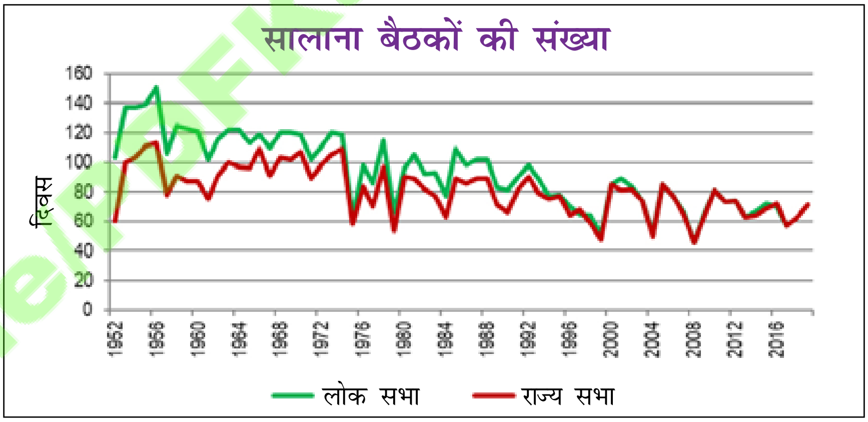

चित्र-1

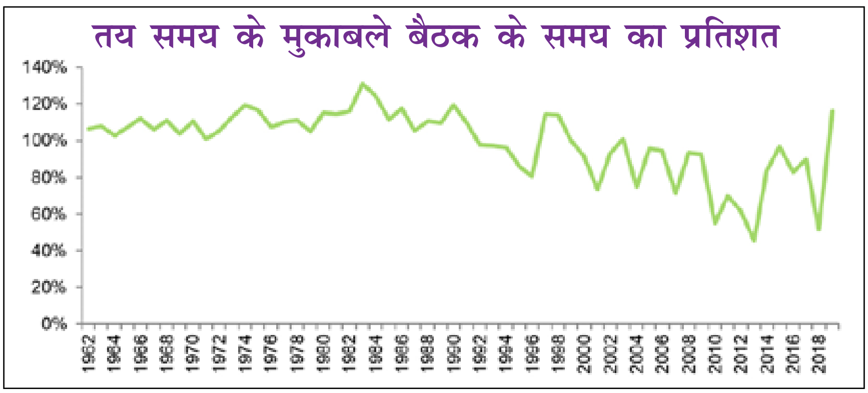

चित्र-2

t.me/PDFKaAdda

लेखक पीआरएस विधायी अनुसंधान, नई दिल्ली के अध्यक्ष हैं। ईमेलः madhavan@prsindia.org

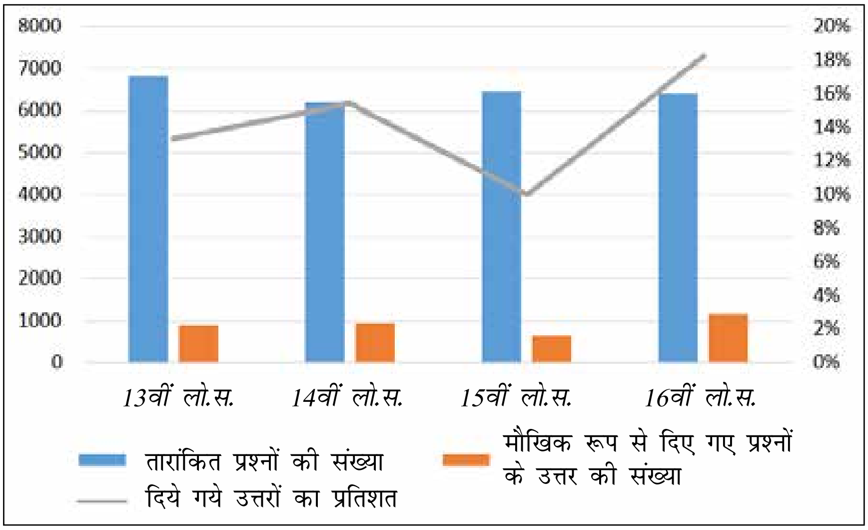

चित्र-3

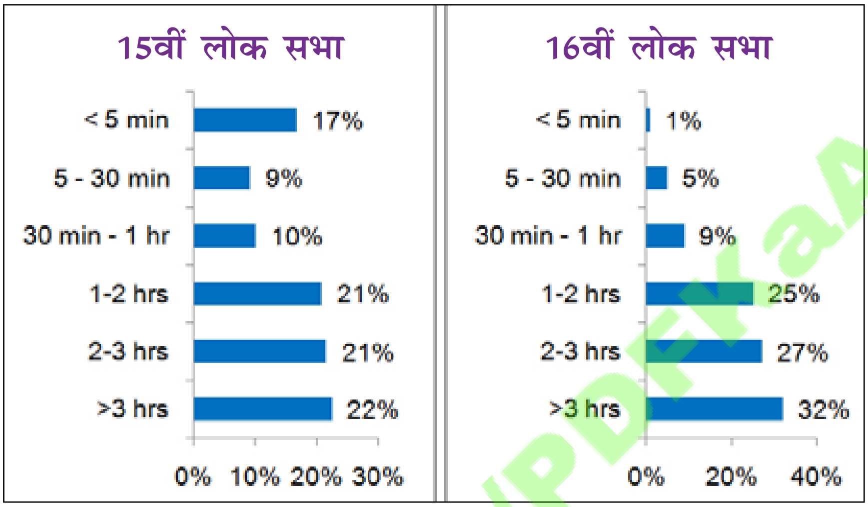

चित्र-4

t.me/PDFKaAdda

सुधार के क्षेत्र

संसद की कार्यवाही की प्रभावकारिता में सुधार के लिए कुछ संरचनात्मक मुद्दों का समाधान किया जाना जरूरी है। इनमें दल बदल विरोधी कानून का निरसन, विधेयकों और बड़ी बहसों में सभी मतों को दर्ज करना, सभी विधेयक समितियों को सौंपना और समितियों की सहयोग प्रणाली मजबूत करना शामिल है।

दल बदलरोधी कानून

1985 में संविधान के 52वं संशोधन द्वारा 10वीं अनुसूची जोड़ी गई। संक्षेप में यह किसी सांसद को अपनी पार्टी छोड़ने पर या पार्टी द्वारा जारी व्हिप के अनुसार मतदान नहीं करने पर अयोग्य घोषित करने का प्रावधान करती है। यह पार्टी नेतृत्व को अपने सभी सदस्यों के मतों पर नियंत्रण देती है। कोई भी सदस्य यदि पार्टी के निर्देशों की अवहेलना करता है, तो वह अपनी सीट खो सकता है और इसके बाद उपचुनाव कराए जा सकते हैं।

हमारा मानना है कि दल बदलरोधी कानून प्रतिनिधित्व वाली लोकतांत्रिक व्यवस्था की मूल अवधारणा के खिलाफ है। यह विधायी प्रस्तावों का निरीक्षण करने वाली और कार्यकारी के कामकाज पर निगरानी रखने वाली संस्था के रूप में संसद की भूमिका कमजोर करती है।

जैसा कि बर्क ने अपने प्रसिद्ध संबोधन में स्पष्ट किया है – ''संसद विचार-विमर्श का मंच है और सांसद अपने कार्य ही नहीं बल्कि अपने फैसले के लिए भी जनता के प्रति उत्तरदायी हैं।'' संविधान का प्रारूप तैयार करते समय डॉ भीमराव आम्बेडकर ने राष्ट्रपति शासन पद्धति और संसदीय शासन पद्धति के अंतर पर गहन विचार-विमर्श किया। उन्होंने कहा कि जहां शासन प्रणाली का पहला प्रकार अधिक स्थिरता उपलब्ध कराता है, वहीं दूसरा प्रकार अधिक जवाबदेही सृजित करता है और भारत जैसे देश में इसकी अधिक जरूरत है। उन्होंने स्पष्ट किया कि इस जवाबदेही का निर्वहन दैनिक आधार पर प्रश्नकाल, प्रस्ताव लाकर, अविश्वास प्रस्ताव, स्थगन प्रस्ताव और अभिभाषण पर बहस के माध्यम से किया जा सकता है। यानी संसद के प्रत्येक सदस्य की मुख्य भूमिका है, निर्णय लेने के अपने अधिकार का उपयोग करना, मुद्दों पर विचार-विमर्श करना, सरकार से संबंधित प्रश्न पूछना और उसकी जवाबदेही तय करना।

दल बदल विरोधी कानून इस सिद्धांत को नकारता है। यह पार्टी नेता के निर्देशों के अनुपालन में सदस्यों की भूमिका कम कर देता है। यदि किसी पार्टी का सदन में बहुमत

है, तो किसी सरकारी विधेयक या प्रस्ताव के समक्ष कोई चुनौती नहीं होती या उन्हें लेकर कोई प्रभावी बहस नहीं होती। चूंकि सदस्यों को अपने फैसले के अनुसार वोट करने की आजादी नहीं होती, इसलिए कोई निर्णय लेने से पहले मुद्दों की बारीकियों को समझने में समय और साधन लगाने का प्रोत्साहन नहीं रहता। ऐसे में संसद विचारशील स्त्री-पुरुषों की संस्था नहीं रह कर कुछ पार्टी नेताओं द्वारा नियंत्रित संस्था में बदल जाती है।

प्रतिनिधित्व प्रणाली में संसद का हर सदस्य किसी निर्वाचन क्षेत्र के नागरिकों द्वारा निर्वाचित होता है। वह सदस्य अपने कार्यों के प्रति अपने कार्यों को लेकर अपने निर्वाचकों के प्रति जवाबदेह होता है और समय समय पर होने वाले चुनाव की प्रक्रिया इस जवाबदेही को बनाए रखने में सहायक होती है, यानी सदस्य को नागरिकों के प्रति उनसे मिले वोट का औचित्य प्रमाणित करना होता है अन्यथा मतदाता उसके खिलाफ वोट देकर अपना संतोष जाहिर कर सकते हैं। जवाबदेही की यह प्रणाली दल बदल विरोधी कानून से बिखर जाती है, क्योंकि सदस्य अपने निर्वाचन क्षेत्र के हितों के खिलाफ जाने वाले मुद्दों को भी यह कह कर सही ठहरा सकता है कि वह पार्टी के निर्देशों का पालन कर रहा था और इस मामले में उसके समक्ष कोई विकल्प नहीं था।

एक और रोचक तथ्य कि दल बदल विरोधी कानून का अविश्वास प्रस्तावों के दौरान बहुत ही सीमित प्रभाव रहा है। ऐसा पिछला प्रस्ताव 2008 में लाया गया था, जब सरकार दांव पर लगी थी। वाम दलों ने यूपीए सरकार से समर्थन वापस ले लिया था। उस मतदान में 21 सांसदों ने पार्टी के खिलाफ जाकर मतदान किया। हमने हाल में कर्नाटक, उत्तराखंड और अरुणाचल प्रदेश जैसे राज्यों में कई उदाहरण देखे हैं, जिनमें दल बदल विरोधी कानून का प्रावधान पार्टी का अनुशासन बनाए रखने में नाकाम रहा है।

कुल मिला कर कहा जाए, तो दल बदलरोधी कानून ने कार्यपालिका के कार्यों की निगरानी की संसद की शक्ति को कमजोर किया है। इससे नागरिकों के प्रति जन प्रतिनिधियों की जवाबदेही में भी कमी आई है और बदल बदल के कारण सरकार गिराए जाने के तो कई उदाहरण हैं इसलिए

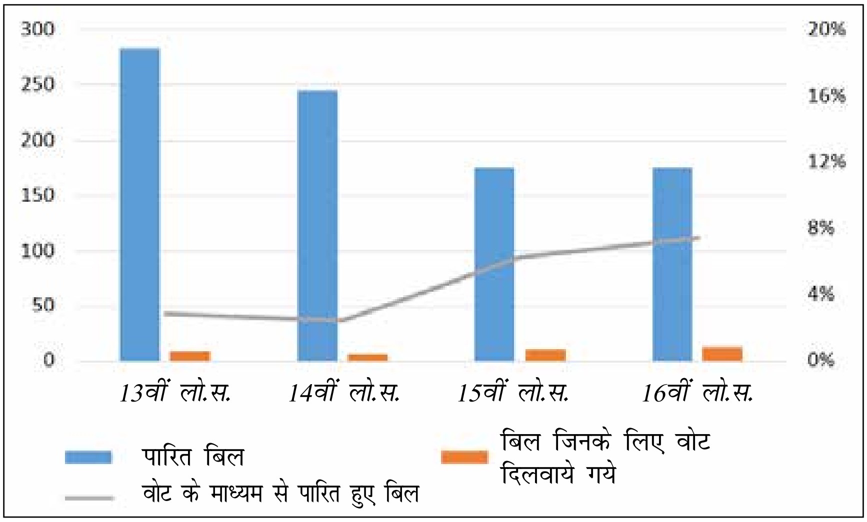

चित्र-5

अब समय आ गया है कि संविधान में इस प्रावधान की पुन: समीक्षा की जाए और विचार किया जाए कि क्या इसे रद्द कर दिया जाना चाहिए?

दर्ज मतदान

यह मुद्दा सांसदों के अपने निर्वाचकों के प्रति जवाबदेही से जुड़ा है। अमरीका या ब्रिटेन जैसे लोकतांत्रिक देशों में विधायकों का मतदान यानी मत विभाजन रिकॉर्ड आसानी से नागरिकों को उपलब्ध हो जाता है। मतदाता और मीडिया विभिन्न मुद्दों पर जन प्रतिनिधियों के रवैये के बारे में उनसे पूछताछ करते हैं और अपने रवैये का औचित्य स्पष्ट करने को कहते हैं। यह जानकारी चुनाव के समय नागरिकों के मतदान विकल्प का आधार बनती है। यह प्रक्रिया मतदाताओं को जन प्रतिनिधियों के कार्यों के लिए उन्हें जवाबदेह ठहराने में मदद करती है।

प्रतिनिधित्व प्रणाली में संसद का हर सदस्य किसी निर्वाचन क्षेत्र के नागरिकों द्वारा निर्वाचित होता है। वह सदस्य अपने कार्यों के प्रति अपने कार्यों को लेकर अपने निर्वाचकों के प्रति जवाबदेह होता है और समय समय पर होने वाले चुनाव की प्रक्रिया इस जवाबदेही को बनाए रखने में सहायक होती है, यानी सदस्य को नागरिकों के प्रति उनसे मिले वोट का औचित्य प्रमाणित करना होता है अन्यथा मतदाता उसके खिलाफ वोट देकर अपना संतोष जाहिर कर सकते हैं।

हमारी संसद में अधिकांश विधेयक और प्रस्ताव ध्वनि मत से पारित होते हैं। अध्यक्ष सदस्यों को किसी प्रस्ताव के समर्थन में ''हां'' और विरोध में ''ना'' बोलने को कहते हैं और इसके बाद अध्यक्ष फैसला करता है कि किस पक्ष में अधिक ध्वनि मत पड़े हैं। अलग अलग सदस्यों को प्राप्त वोट तभी दर्ज (जिसे मत विभाजन कहते हैं) किए जाते हैं जब किसी सांसद ने इसकी मांग की हो। संविधान संशोधन के लिए लाए गए विधेयक इसे अपवाद हैं। परिणाम स्वरूप, केवल कुछ विधेयक या प्रस्ताव पर ही मत विभाजन होता है। (चित्र-5) उन विधेयकों की संख्या दर्शाता है, जिनके लिए मत विभाजन हुआ है।

इस पूरी व्यवस्था का अर्थ है कि मतदाता अपने सांसदों के मतदान आचरण को लेकर सवाल नहीं पूछ सकते। इसका महत्व कुछ विरल उदाहरणों से उभर कर सामने आता है, जिनमें मत दर्ज किए गए। उदाहरण के लिए 2012 के दिल्ली सामूहिक दुष्कर्म घटना और न्यायमूर्ति वर्मा समिति की रिपोर्ट के बाद आपराधिक कानून संशोधन विधेयक पर मत विभाजन हुआ था। लोकसभा में मौजूद सदस्यों के बीच विधेयक के समर्थन में सर्वसम्मति थी। मतदान के दौरान 545 सांसदों में से केवल 198 उपस्थित थे। शुक्र है कि मतदान दर्ज किया गया था।

t.me/PDFKaAdda

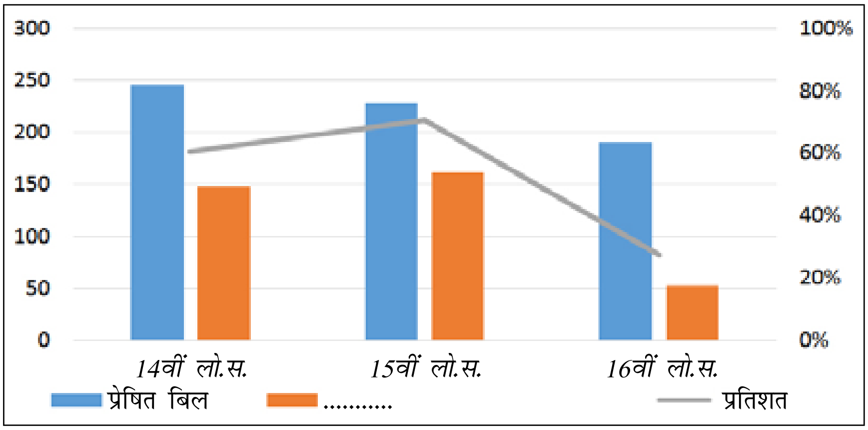

चित्र-6

समिति प्रणाली

500 सदस्यों से ऊपर के सदन में कार्य और विषयों की अधिकता के कारण विस्तार से सभी मुद्दों की समीक्षा काफी कठिन हो जाती है। इसलिए संसद ने विभिन्न मुद्दों की समीक्षा और पूर्ण सदन को सुझाव देने के लिए अनेक समितियां गठित की हैं। प्रत्येक समिति में 20 से 35 सदस्य हैं। इनमें वित्तीय समितियां, विभागों से संबंधित स्थायी समितियां (डीआरएससी) और विभिन्न अन्य समितियां जैसे विशेषाधिकारों और नीतियों पर विचार करने वाली, दोनों सदनों की दैनिक कार्य सूची तय करने वाली और विधानों पर विचार करने वाली समितियां। यहां समितियों के कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कार्यों को समझना उपयोगी होगा, जो पूर्ण सदन के लिए कठिन साबित होता। किसी भी मुद्दे की जांच प्रक्रिया में समितियां विभिन्न दृष्टिकोण से मुद्दे की परख करने वाले विशेषज्ञों और पक्षों को शामिल करती हैं। इससे संसद की भी पहुंच बाहरी विशेषज्ञों तक हो जाती है और लोगों की चिंताओं को भी समझने में मदद मिलती है, जिन पर इस मुद्दे या विधेयक का असर पड़ने वाला है। समिति प्रणाली सांसदों को परस्पर विरोधी प्राथमिकताओं को समझने में भी मदद करती है। यह इस तथ्य से समझा जा सकता है कि अधिकांश रिपोर्ट को सर्वसम्मत समर्थन मिलता है। बहुत ही कम ऐसे उदाहरण हैं, जहां कुछ सदस्यों ने विरोध प्रकट किया हो।

वित्तीय समितियां

तीन वित्तीय समितियां हैं। लोक लेखा समिति (पीएसी), जो विभिन्न मंत्रालयों पर नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (सीएजी) की रिपोर्ट की समीक्षा करती है, अधिकारियों के जवाब पर विचार करती है और अपने सुझाव देती है। इस प्रकार ये समिति सार्वजनिक वित्त के उपयोग की निगरानी सुनिश्चित करने में मदद करती है। सार्वजनिक उपक्रम समिति (सीओपीयू) सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के संदर्भ में इसी प्रकार की भूमिका निभाती है। आकलन समिति इस बात की देखरेख करती है कि विभिन्न प्राथमिकताओं के लिए राशि का आवंटन कुशलता से किया गया या नहीं।

लोकलेखा समिति की अध्यक्षता विपक्ष के वरिष्ठ सदस्य द्वारा की जाती है। 16वीं लोकसभा (2014-2019) के दौरान इस समिति ने 137 रिपोर्ट सौंपीं, जिनमें 957 सुझाव दिए गए थे। इनमें से 80 प्रतिशत सुझाव सरकार ने स्वीकृत कर लिए।

विभागों से जुड़ी स्थायी समितियां

संसद ने ऐसी 24 समितियां गठित की हैं, जिनमें से प्रत्येक मंत्रालयों और विभागों के एक समूह का निरीक्षण करती हैं। ये विधेयकों, विभाग की अनुदान मांगों और उस मंत्रालय के कार्यक्षेत्र में आने वाले विभिन्न विषयों की समीक्षा करती हैं (उदाहरण के लिए गृह मंत्रालय की समिति सीआरपीएफ के कामकाज का निरीक्षण करेगी)। समितियों की रिपोर्ट सदन के पटल पर रखी जाती है। सरकार समितियों के सुझावों पर अपनी प्रतिक्रिया देती है और तब अंतिम रिपोर्ट तैयार की जाती है।

सभी विधेयक सीधे समिति को नहीं भेजे जाते (जबकि ब्रिटिश संसद में धन विधेयक को छोड़कर अन्य सभी विधेयकों को समिति की जांच की अनिवार्य प्रक्रिया से गुजरना होता है)। लोकसभा अध्यक्ष या राज्यसभा के सभापति द्वारा सरकार के परामर्श से समिति को विधेयक भेजने का निर्णय लिया जाता है। हाल के वर्षों में समिति को भेजे जाने वाले विधेयकों के प्रतिशत में कमी आई है। (चित्र-6)

अधीनस्थ विधायी समिति

जब संसद किसी विधेयक को पारित कर अधिनियम बनाती है, तो यह सरकार द्वारा नियमों के माध्यम से या विधायी निकायों द्वारा विनियमों के माध्यम से विवरण प्रस्तुत करती है। उदाहरण के लिए भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम आरबीआई को अधिकतम सीमा तक वैधानिक नकदी प्रवाह निर्धारित करने की अनुमति देता है। अधीनस्थ विधायी समिति यह सुनिश्चित करने के लिए नियमों और विनियमों की समीक्षा करती है कि इनमें विधायी तत्वों का अक्षरशः पालन किया गया हो।

संसदीय समितियों की कार्य प्रणाली को और मजबूत बनाए जाने की आवश्यकता है। इनमें सदस्यों की मदद के लिए विशेषज्ञ अनुसंधानकर्मी नहीं हैं। अक्सर महत्वपूर्ण विधेयक इन समितियों को नहीं भेजे जाते। इसे एक अनिवार्य कदम बनाने के लिए संसदीय प्रक्रिया की पुनः समीक्षा की आवश्यकता है। इनमें सदस्यों की उपस्थिति लगभग 50 प्रतिशत ही रहती है, जो कि सदन में सदस्यों की 80 प्रतिशत उपस्थिति से काफी कम है।

निष्कर्ष

संसद प्रतिनिधित्व शासन प्रणाली में केंद्रीय भूमिका निभाती है, जिसका प्रभाव नागरिकों के जीवन के हर पहलू पर पड़ता है। लगभग 70 वर्षों के दौरान संसद ने उल्लेखनीय कार्य किया है, संभवतः सर्वाधिक विविधता वाले देश में आंतरिक तनावों के प्रबंधन में मदद की है। अनेक सामाजिक सुधारों और आर्थिक प्रगति की आधारशिला संसद ने रखी है। हालांकि ऐसे अनेक उपाय हैं, जिनके द्वारा संसद की प्रभावशीलता और बढ़ाई जा सके। इनमें दल बदल विरोधी कानून को समाप्त करना, सांसदों का मतदान रिकॉर्ड करना अनिवार्य बनाना और समिति प्रणाली को और मजबूत करना शामिल है। ❑

संदर्भ

1. बर्क, एडमंड स्पीच टू द इलेक्टर्स ऑफ ब्रिस्टल, 1774
2. कांस्टीटुएंट एसेम्बली डिबेट्स, वॉ. VII 4 नवंबर, 1948

t.me/PDFKaAdda

संविधान सभा और संविधान का निर्माण

भारत के संविधान का मसौदा संविधान सभा (1946 के कैबिनेट मिशन प्लान के तहत स्थापित) द्वारा वर्ष 1946 से 1949 के बीच तैयार किया गया। डॉ राजेन्द्र प्रसाद ने इस सभा के अध्यक्ष के रूप में अपनी सेवाएं दीं।

सभा के के 299 सदस्यों (15 महिलाओं सहित) ने संविधान का मसौदा तैयार करने में तीन वर्ष से कम (1946 से 1949) समय लिया।

संविधान सभा के सदस्य दिसंबर 1946 और नवंबर 1949 के बीच 11 सत्रों में मिले।

29 अगस्त, 1947 को संविधान सभा द्वारा संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए डॉ बी.आर. आंबेडकर की अध्यक्षता में एक मसौदा समिति का गठन किया गया।

"भारत के आदरणीय बाबा साहेब आंबेडकरजी के नेतृत्व में एक समावेशी संविधान का मसौदा तैयार किया गया। यह समावेशी संविधान नए भारत के निर्माण के संकल्प में अग्रणी है। इसमें हमारे लिए कुछ कर्त्तव्य भी हैं और इसने हमारी कुछ सीमाएं भी निर्धारित की है।"

नरेन्द्र मोदी
प्रधानमंत्री

"संविधान अधिवक्ताओं का दस्तावेज़ मात्र नहीं है, यह जीवन का माध्यम है और इसकी आत्मा सदैव युग की आत्मा है।"

डॉ बी.आर. आंबेडकर

डॉ बी.आर. आंबेडकर का चित्र

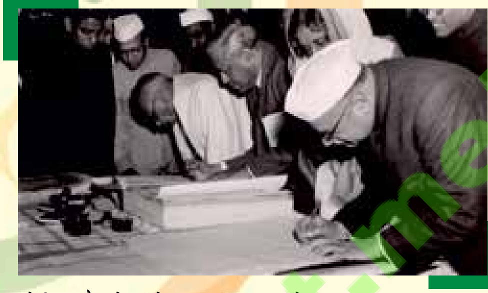

केंद्रीय कैबिनेट के सदस्य भारत के संविधान पर हस्ताक्षर करते हुए। राजकुमारी अमृत कौर, डॉ जॉन मथाई और सरदार वल्लभभाई पटेल चित्र में दिखाई दे रहे हैं।

भारतीय संविधान 26 नवंबर, 1949 को अंगीकार किया गया और यह 26 जनवरी, 1950 से प्रभावी हुआ। इसी दिन से संविधान सभा का अस्तित्व समाप्त हो गया और यह दस्तावेज़, 1952 में, जब तक नई संसद का गठन नहीं हो गया, भारत का अंतरिम संविधान बन गया। संविधान के मसौदे पर विचार करते हुए कुल प्रस्तावित 7635 संशोधनों में से 2473 संशोधनों का चर्चा उपरांत निराकरण किया गया।

संविधान सभा के कुल 299 सदस्यों में से 284 सदस्यों ने संविधान की मूल प्रति पर हस्ताक्षर किए।

t.me/PDFKadda

संविधान सभा ने संविधान निर्माण के अंतर्गत विभिन्न कार्यों को निपटाने के लिए कुल 13 समितियां का गठन किया। इनमें से 8 प्रमुख समितियां थीं और अन्य गौण समितियां थीं।

संविधान सभा की 8 प्रमुख समितियों के नाम

- मसौदा समिति
- केंद्रीय शक्ति समिति
- केंद्रीय संविधान समिति
- प्रांतीय संविधान समिति
- मौलिक अधिकारों, अल्पसंख्यकों और जनजातीय तथा अपवर्जित क्षेत्रों पर
- सलाहकार समिति
- प्रक्रिया नियम समिति
- संचालन समिति

24 जनवरी, 1950 को संविधान सभा के पहले सत्र में सरदार वल्लभभाई पटेल

संविधान सभा का गठन और प्रमुख सदस्य

कैबिनेट मिशन की सिफारिशों के अनुसार प्रांतीय असेंबलियों द्वारा अप्रत्यक्ष चुनाव के माध्यम से संविधान सभा के सदस्यों का चयन किया गया। इस सभा में 299 सदस्य थे, जो 229 प्रांतों और 70 राज्यों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

सभा के कुछ प्रसिद्ध सदस्यों में शामिल थे:

- डॉ राजेंद्र प्रसाद
- सरदार वल्लभभाई पटेल
- जवाहरलाल नेहरू
- डॉ बी.आर. आंबेडकर
- गोविंद बल्लभ पंत
- मौलाना अब्दुल कलाम आजाद
- सरोजिनी नायडू
- राजकुमारी अमृत कौर
- जे.बी. कृपलानी
- सी. राजगोपालाचारी
- शरत चंद्र बोस
- आसफ अली
- श्यामा प्रसाद मुखर्जी
- हंसा मेहता
- गोपीनाथ बोरदोलोई
- हरेंद्र कुमार मुखर्जी
- विनोदानंद झा
- दुर्गाबाई देशमुख
- फ्रेंक एंथोनी
- जयपाल सिंह मुंडा
- हरगोविंद पंत
- जॉन मथाई
- बेगम एजाज़ रसूल
- के.एम. मुंशी
- सर्वपल्ली राधाकृष्णन
- अम्मू स्वामीनाथन
- एम. अनंथसायनम अयंगर
- अललादि कृष्णास्वामी अय्यर
- बी. पट्टाभि सीतारामय्या
- टी. प्रकासम
- एन. संजीव रेड्डी
- एस. लिजलिंगप्पा
- जी.वी. मावलंकर
- पदांपत सिंघानियां
- पुरषोत्तमदास टंडन
- हसरत मोहनी
- रफी अहमद किदवई
- अनुग्रहनारायण सिन्हा
- जगजीवन राम
- सच्चिदानंद सिन्हा
- सत्यनारायण सिन्हा
- श्री कृष्ण सिन्हा
- सेठ गोविंद दास
- हरी सिंह गौर
- पंजाबराव एस देशमुख
- रवि शंकर शुक्ला
- हरीकृष्णा महताब
- अग्नि मस्करेना
- जीवराज नारायण मेहता
- मोतुरी सत्यनारायण
- दीप नारायण सिंह
- सर सय्यद मुहम्मद सदुल्ला
- के. कामराज
- पी. सुब्बारायन

स्रोत: www.doj.gov.in

t.me/UPSCFKaAdda

संविधान सभा ने 22 जुलाई, 1947 को राष्ट्रीय ध्वज तथा 24 जनवरी, 1950 को राष्ट्रगान एवं राष्ट्रगीत को अंगीकार किया।

आधुनिक भारतीय कला के प्रख्यात व्यक्तित्व श्री नंद लाल बोस ने संविधान के प्रत्येक पृष्ठ के मार्जिन का रूपांकन किया और उन्हें कलात्मक चित्रों के साथ सुशोभित किया।

कैलीग्राफिक कला में निष्णात श्री प्रेम बिहारी नारायण रायज़ादा ने स्वयं पूरे संविधान को लिखा। इस कार्य को पूरा करने में 6 महीने का समय लगा और उन्होंने इस कार्य के लिए कोई पारिश्रमिक नहीं लिया।

मौलिक कर्त्तव्य - महत्व और संकलन

“मुझे अपने कर्त्तव्यों की अनुभूति अपनी मां की गोद में ही हो गई थी। वह एक कम पढ़ी-लिखी अशिक्षित महिला थीं... उन्हें मेरा धर्म ज्ञात था। अत: यदि हमें बचपन में ही अपने धर्म का ज्ञान हो जाए और हम उस पर अमल की कोशिश करने लगें तो हमें अपने अधिकार स्वत: ही मिलने लगते हैं... सबसे बड़ी विशेषता यही है कि कर्त्तव्य के निवर्हन से हमारे अधिकार स्वत: ही सुरक्षित हो जाते हैं। अधिकारों को कभी भी कर्त्तव्यों से अलग नहीं किया जा सकता है। इसी से सत्याग्रह की उत्पत्ति हुई क्योंकि मैं सदैव यह जानने के लिए प्रयासरत रहा था कि आखिरकार मेरा कर्त्तव्य क्या है।”

28 जून, 1947 को दिल्ली में एक प्रार्थना सभा में मौलिक कर्त्तव्यों के महत्व पर महात्मा गांधी के अनमोल विचार

हमारे संविधान में 11 मौलिक कर्त्तव्यों को सम्मिलित करने का मुख्य उद्देश्य देश के नागरिकों को मिले व्यापक अधिकारों के बदले में उनके दायित्वों पर विशेष जोर देना था।

मौलिक कर्त्तव्यों के तहत सम्मान, गौरव, सहिष्णुता, शांति, विकास और सद्भाव के महत्वपूर्ण मूल्यों पर ध्यान दिया जाता है।

42वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा वर्ष 1976 में संविधान में शामिल मौलिक कर्त्तव्य राष्ट्र के प्रति नागरिकों के बुनियादी, नैतिक एवं अपरिहार्य दायित्वों को निर्दिष्ट करते हैं।

मौलिक कर्त्तव्यों को सम्मिलित करने की अनुशंसा करते समय गठित समिति ने यह राय व्यक्त की थी कि देश के नागरिक अपने मौलिक अधिकारों का उपयोग करते समय अपने कर्त्तव्यों को नजरअंदाज न करें। यह सुनिश्चित करने के लिए ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है।

बच्चों के लिए शिक्षा के अवसरों से संबंधित 11वें मौलिक कर्त्तव्य को 86वें संशोधन अधिनियम, 2002 के जरिए संविधान में जोड़ा गया था।

t.me/PDFKaAdda

मौलिक कर्त्तव्यों के संबंध में संदर्भ सोवियत संघ, जापान और चीन के संविधानों से मिली है।

हमारे मौलिक कर्त्तव्य भारतीय जीवन शैली को बढ़ावा देने में अभिन्न माने जाने वाले कर्त्तव्यों का समावेश करते हैं। वे समाज के अनुशासन और प्रतिबद्धता की सच्ची भावना को प्रोत्साहित करते हैं।

मौलिक कर्त्तव्यों का मुख्य उद्देश्य प्रत्येक नागरिक को सदैव यह स्मरण कराना है कि वैसे तो संविधान ने उन्हें कुछ विशिष्ट मौलिक अधिकार दिए हैं, लेकिन इसके साथ ही लोकतांत्रिक आचरण और लोकतांत्रिक आचार-व्यवहार के कुछ विशेष बुनियादी मानकों का पालन करना भी उनके लिए अत्यंत आवश्यक है क्योंकि अधिकार और कर्त्तव्य एक-दूसरे से जुड़े होते हैं।

“लोकतंत्र सिर्फ सरकार का एक स्वरूप नहीं है, यह वस्तुत: हमारे देशवासियों के प्रति सम्मान और श्रद्धा का एक मनोभाव है।”

डॉ बी.आर. आंबेडकर

“प्रत्येक भारतीय को अब यह भूल जाना चाहिए कि वह कोई राजपूत, सिख या जाट है। उसे अवश्य ही यह याद रखना चाहिए कि वह एक भारतीय है और उसे अपने देश में हर अधिकार प्राप्त हैं, लेकिन कुछ विशेष कर्त्तव्यों के साथ।”

सरदार वल्लभभाई पटेल

नागरिक और मौलिक कर्त्तव्य केवल सक्रिय भागीदारी के जरिए ही हमारे राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने में हमारी मदद कर सकते हैं।

अक्टूबर, 1999 में श्री न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा की अध्यक्षता वाली समिति ने देश के नागरिकों को मौलिक कर्त्तव्य सिखाने के बारे में सुझाव पर एक रिपोर्ट पेश की थी।

संविधान (भाग IV-L, अनुच्छेद 51L) में अंतर्निहित 11 कर्त्तव्य

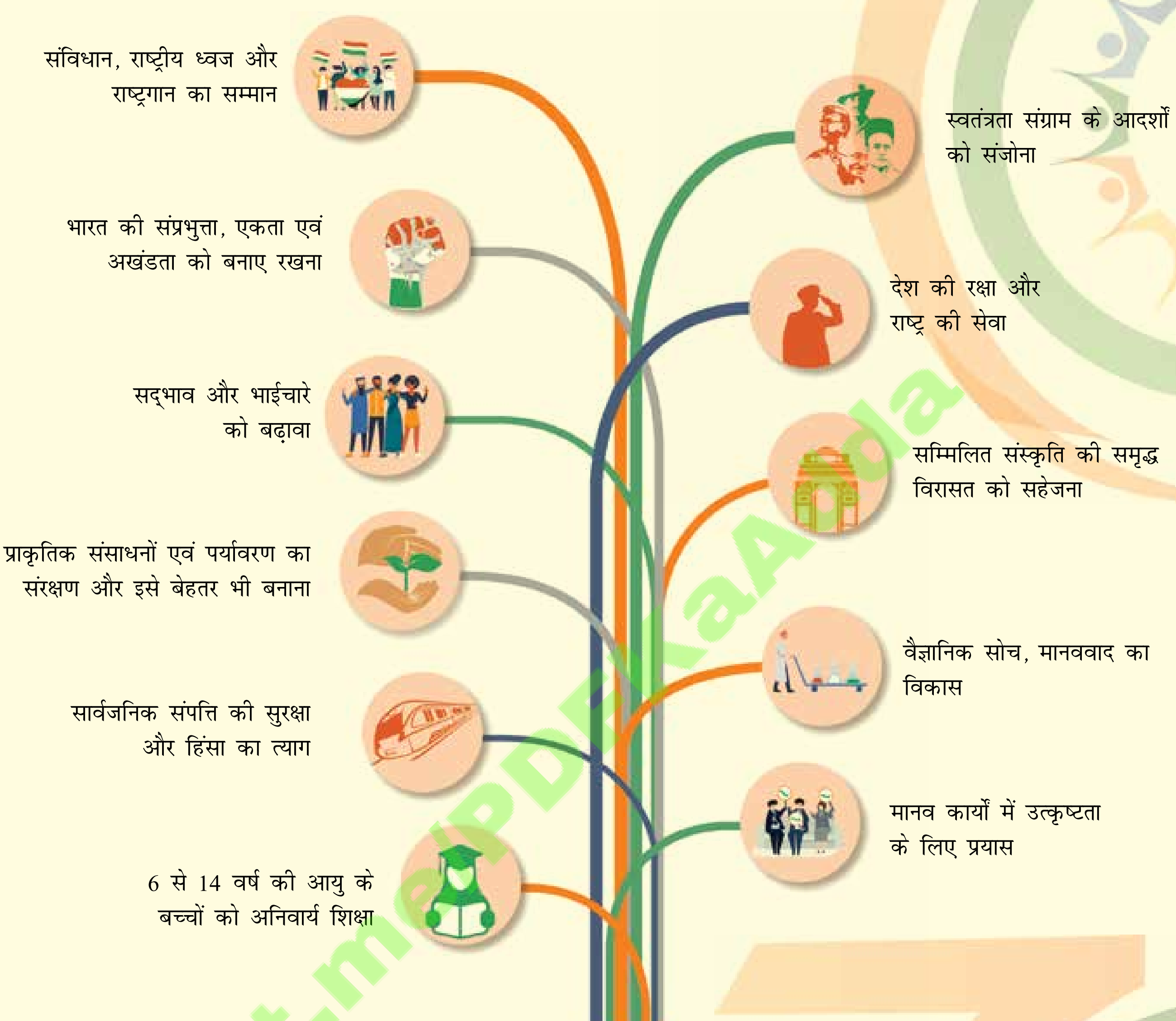

t.me/PDFKaAdda

संविधान में मौलिक कर्त्तव्यों को जोड़ने से ये मानवाधिकारों के श्रेणीबद्ध घोषणा-पत्र के अनुच्छेद 29(1) के साथ सार्वभौमिक हो गए हैं।

“ हमें जीने का अधिकार केवल तभी मिलता है जब हम दुनिया की नागरिकता का कर्त्तव्य निभाते हैं। यह एक मौलिक कथन संभवत: पुरुष एवं महिला के कर्त्तव्यों को परिभाषित करने और प्रत्येक अधिकार को सबसे पहले पूरे किए जाने वाले किसी संबंधित कर्त्तव्य से जोड़ने के लिए काफी हद तक पर्याप्त है। हर उस दूसरे अधिकार को पूर्वानुमान के रूप में समझा जा सकता है जिसे पाने के लिए शायद ही लड़ने की आवश्यकता हो। ”

महात्मा गांधी

मौलिक अधिकार और कर्त्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

महात्मा गांधी ने कहा है कि कर्त्तव्य का स्रोत अधिकार है। यदि हम अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हैं तो अधिकार स्वयमेव मिल जाएंगे।

लोकतंत्र तब तक समाज में अपने गहरी जड़ें नहीं जमा सकता है जब तक देश के नागरिक अपने मौलिक अधिकारों के साथ अपने मौलिक कर्त्तव्यों का निर्वहन पूरक के तौर पर नहीं करते हैं।

प्रत्येक अधिकार के साथ एक संबंधित कर्त्तव्य भी जुड़ा होता है। किसी भी व्यक्ति द्वारा अपने नागरिक कर्त्तव्य का निर्वहन दूसरों के अधिकारों को सुनिश्चित करता है।

जब हम अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हैं, तभी हम अधिकार पाने के हकदार होते हैं।

स्रोत: www.doj.gov.in

भारतीय संविधानवाद और शासकीय अंगों के बीच संतुलन

एस एन त्रिपाठी
सी शीला रेड्डी

संविधान का मुख्य उद्देश्य सरकार के विभिन्न अंगों को सिर्फ अधिकार देना ही नहीं बल्कि उन अधिकारों को सीमित करना भी है। संविधानवाद अंकुशों और संतुलनों की परिकल्पना करते हुए विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्तियों को सीमित करता है। संविधानवाद का सार ही यही है कि शासन का कोई भी अंग संविधान प्रदत्त शक्तियों से बाहर जाकर खुद के लिये शक्तियां नहीं हड़प सके।

किसी लोकतांत्रिक देश का संविधान शासन के बुनियादी अंगों की स्थापना करने के अलावा उनके लिये सुपरिभाषित दायित्वों और खास शक्तियों का निर्धारण भी करता है ताकि वे जनता के प्रति जवाबदेह हों। जवाबदेही को समय-समय पर होने वाले चुनावों तथा अंदरूनी अंकुशों और संतुलनों के जरिये सुनिश्चित किया जाता है। सरकार को अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने से रोकने के लिये उसकी संस्थाओं के अंदर अंकुशों और संतुलनों का होना जरूरी है। लॉर्ड एक्टन के शब्दों में, ''सत्ता भ्रष्ट करती है और निरंकुश सत्ता पूरी तरह भ्रष्ट बनाती है।'' अरस्तू का दृढ़ विश्वास था कि अच्छी सरकार की शक्तियां सीमित होनी चाहिये। फ्रांसीसी चिंतक मोंटेस्क्यू ने अंकुश और संतुलन बरकरार रखने के लिये शक्तियों के पृथक्कीकरण का जो सिद्धांत दिया था वह आधुनिक लोकतांत्रिक देशों के संविधानों का दिशा-निर्देशक तत्व बन गया है। शक्तियों के पृथक्कीकरण का मतलब उनके बीच समान संतुलन भले ही नहीं हो मगर यह निस्संदेह एक-दूसरे पर लगाम लगाने का काम करता है।

संविधानवाद की भावना

शासन के क्षेत्रों को आम तौर पर व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में वर्गीकृत किया गया है। व्यवस्थापिका का काम कानून बनाना और कार्यपालिका का दायित्व उन्हें लागू करना है। न्यायपालिका कानूनों को बनाये और लागू किये जाने से संबंधित विवादों का निपटारा करती है। संविधान का मुख्य उद्देश्य सरकार के विभिन्न अंगों को सिर्फ अधिकार देना ही नहीं बल्कि उन अधिकारों को सीमित करना भी है। संविधानवाद अंकुशों और संतुलनों की परिकल्पना करते हुए विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्तियों को सीमित करता है। संविधानवाद का सार ही यही है कि शासन का कोई भी अंग संविधान प्रदत्त शक्तियों से बाहर जाकर खुद के लिये शक्तियां नहीं हड़प सके। भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश केजी बालाकृष्णन ने कहा था, ''संविधान न्यायपालिका समेत शासन के सभी अंगों के ढांचों के अलावा उनकी

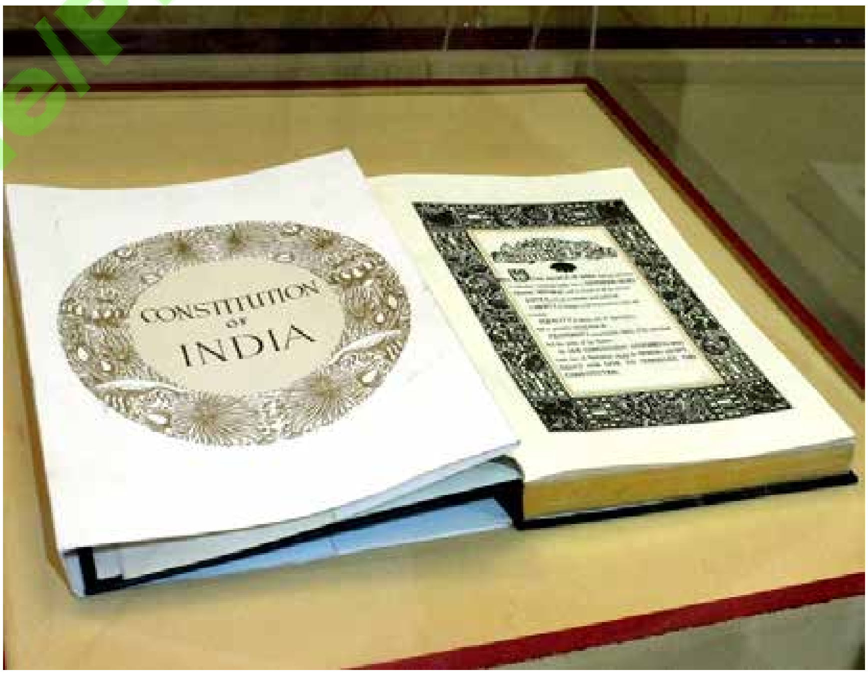

एस एन त्रिपाठी भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली के निदेशक हैं। ईमेलः sntripathi@gmail.com
सी शीला रेड्डी भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली में प्रोफेसर हैं। ईमेलः sheelachavva@gmail.com

सीमाओं को भी परिभाषित करता है। वह इन सभी अंगों की भूमिका और कामकाज को तय करने के अलावा उनके आपसी संबंधों, अंकुशों और संतुलनों के प्रतिमानों का निर्धारण करता है।''

भारतीय संविधान शक्तियों के पृथक्कीकरण का एक तीसरा और अनूठा मॉडल पेश करता है। आम तौर पर जिन दो अन्य मॉडलों को अपनाया गया है वे अमेरिका और ब्रिटेन के संविधान हैं। अमेरिकी संविधान में शासन के तीनों अंगों के बीच शक्तियों के ठोस पृथक्कीकरण के साथ न्यायपालिका को एक विशिष्ट दर्जा दिया गया है। दूसरी ओर ब्रिटिश संविधान (वेस्टमिंस्टर मॉडल) में संसद की सर्वोच्चता के सिद्धांत के आधार पर शासन के विभिन्न अंगों के बीच पृथक्कीकरण ढीला-ढाला रखा गया है। भारत में संविधान सर्वोच्च है। हमारे देश में अगर कोई व्यवस्था संविधान के प्रावधानों का अतिक्रमण करती है तो उसे स्वत: निरस्त और असंवैधानिक माना जायेगा। शासन के विभिन्न अंगों के बीच यह जागरूकता है कि उनकी शक्तियां बिना शर्त और स्थाई नहीं हैं।

कामकाज का अधिव्यापन : विधायिका और कार्यपालिका

भारत ने शासन की राष्ट्रपति प्रणाली के बजाय संसदीय व्यवस्था को चुना है। लेकिन भारतीय संसद को ब्रिटेन की पार्लियामेंट की तरह सर्वोच्चता हासिल नहीं है। ब्रिटेन की पार्लियामेंट को संविधान को संशोधित या निरस्त करने की व्यापक शक्ति दी गयी है। लेकिन भारत में वैधानिक और संवैधानिक कानून में फर्क है। संविधान में संशोधनों के लिये अनुच्छेद 368 के तहत विशेष प्रावधान किये गये हैं। लेकिन उच्चतम न्यायालय ने केशवानंद भारती बनाम केरल सरकार (1973) मामले में कहा है कि संविधान के बुनियादी ढांचे के साथ छेड़छाड़ करने वाले किसी भी संशोधन को असंवैधानिक मानते हुए निरस्त कर दिया जायेगा। भारत में संसद को अपनी शक्तियां संविधान से मिलती हैं। उसके पास संविधान को नजरअंदाज करने का निरंकुश और मनमाना अधिकार नहीं है।

भारतीय संविधान शक्तियों के पृथक्कीकरण के सिद्धांत का अक्षरश: पालन नहीं करता। कार्यपालिका हमारे देश में विधायिका का हिस्सा होने के नाते उसके लिये जिम्मेदार भी है। सभी विधानों के लिये केन्द्र में राष्ट्रपति और राज्यों में राज्यपाल की मंजूरी की जरूरत पड़ती है।

राष्ट्रपति (अनुच्छेद 123) या राज्यपाल (अनुच्छेद 213) को विधायिका के दोनों सदनों के सत्र में नहीं होने की स्थिति में अध्यादेश जारी करने का अधिकार है। इस अध्यादेश का दर्जा विधायिका से निर्मित कानून के समान ही होता है। लिहाजा, ऐसे मौके भी आ सकते हैं जब कार्यपालिका विधान की सामान्य प्रक्रिया को दरकिनार करने के लिये अध्यादेश के जरिये शासन का सहारा ले रही हो।

अनुच्छेद 311 कार्यपालिका को केन्द्र या राज्य के तहत किसी असैनिक पद पर तैनात व्यक्ति के खिलाफ आरोपों की जांच करने और उसे सजा देने की इजाजत प्रदान करता है। राष्ट्रपति या राज्यपाल के पास किसी भी मुजरिम को माफी देने या उसकी सजा में बदलाव करने का अधिकार है। विधायिका के पास न्यायिक कामकाज का भी अधिकार है। संसद अपने विशेषाधिकारों का हनन या अपनी अवमानना की स्थिति में किसी भी सदस्य या बाहरी व्यक्ति को सजा दे सकती है। यह सजा फटकार, चेतावनी और कैद में से कुछ भी हो सकती है। सदस्य के मामले में उसे निलंबित या निष्कासित भी किया जा सकता है। कार्यपालिका सामान्य रूप से विधायिका पर निर्भर है। मगर यह अधीनस्थ विधान के रूप में कुछ विधायी कार्य भी करती है। विधायिका बेशक कार्यपालिका को नियंत्रित करने के अलावा उसे हटा भी सकती है। लेकिन वह कार्यपालिका के कुछ कार्य भी करती है जिनमें सदन में व्यवस्था बनाये रखने के लिये जरूरी कदम शामिल हैं।

अनुच्छेद 323 ए और 323 बी को बयालीसवें संशोधन (1976) के जरिये संविधान में शामिल किया गया है। इन अनुच्छेदों के जरिये संसद और विधानसभाओं को ट्राइब्यूनल बनाने के लिये अधिकृत किया गया है। इन ट्राइब्यूनलों को विभिन्न विषयों पर विवादों का निपटारा करने के अधिकार हस्तांतरित किये जा सकते हैं। इन विषयों को न्यायालयों के न्याय क्षेत्र से बाहर कर दिया जाता है। इन अनुच्छेदों ने अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 226 के तहत समीक्षा की न्यायालय की शक्तियों को पूरी तरह खत्म करना और ये शक्तियां विधायी तौर पर ट्राइब्यूनलों को सौंपना संभव बना दिया है। संसद को उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के गठन, संगठन, अधिकार क्षेत्र और शक्तियों के बारे में कानून बनाने का अधिकार है। उसे न्यायाधीशों के खिलाफ महाभियोग चलाने का भी अधिकार है। बेशक इस प्रक्रिया का नतीजा संसदीय बहुमत पर निर्भर करता है। भारतीय संविधान के तहत कामकाज का अधिव्यापन कार्यपालिका को विधायिका और न्यायपालिका के प्रमुख काम करने की इजाजत भी देता है। संविधान के अंतर्गत उच्च न्यायालयों में नियुक्त किये जाने वाले न्यायाधीशों की संख्या के निर्धारण का अधिकार राष्ट्रपति को है। उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय में न्यायाधीश किसे नियुक्त किया जाये इस बारे में अंतिम फैसला भी राष्ट्रपति ही करते हैं। संविधान के तहत कार्यपालिका को प्रदान की गयी विधायी शक्तियों के संभवत: सबसे असामान्य स्वरूप का जिक्र आपातकालीन प्रावधानों (अनुच्छेद 352, 356 और 360) के तहत किया गया है।

न्यायपालिका की भूमिका

न्यायपालिका न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का इस्तेमाल कर निष्पक्षता के सिद्धांत के आधार पर संवैधानिक प्रावधानों और कानून के शासन के सुस्थापित सिद्धांतों के आलोक में विधायिका और कार्यपालिका

t.me/PDFkaAdda

की चूक और गड़बड़ी पर फैसला करती है। न्यायपालिका को दिया गया यह विशेष अधिकार उसकी इस जिम्मेदारी को भी बढ़ाता है कि वह न्यायिक समीक्षा के शक्ति का इस्तेमाल करते समय ज्यादा सावधान और सचेत रहे। उसे शक्तियों के पृथक्कीकरण के सिद्धांत का सम्मान करते हुए इसकी अवहेलना से बचना चाहिये।

किसी विधान या कार्यपालिका के फैसले की संवैधानिकता की जांच के लिये न्यायिक समीक्षा से कभी-कभार लोकतंत्र के तीनों स्तंभों के बीच टकराव भी पैदा होता है। उच्चतम न्यायालय संसद के बनाये कानूनों की संवैधानिक वैधता का फैसला करता है। इस तरह उसके जरिये संविधान मुखरित होता है। न्यायालय का फैसला विधायिका या कार्यपालिका के कानून या किसी अन्य फैसले की वैधता को बढ़ाता या घटाता है। संविधान का अनुच्छेद 32 उसे नागरिकों को दिये गये उन मौलिक अधिकारों का रखवाला बनाता है जिनका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। इन मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये वह आदेश जारी कर सकता है। यहां तक कि उच्च न्यायालयों को भी अनुच्छेद 226 के तहत मौलिक और अन्य कानूनी अधिकारों की रक्षा के लिये इस तरह का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 141 में कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित कानून भारत की सभी अदालतों के लिये बाध्यकारी होगा। अनुच्छेद 142 के तहत वह अपने सामने आये किसी भी मामले में संपूर्ण न्याय प्रदान करने के लिये जरूरी फरमान या आदेश जारी कर सकता है। अनुच्छेद 144 में कहा गया है कि सभी असैनिक और न्यायिक प्राधिकार उच्चतम न्यायालय के सहयोग के लिये काम करेंगे। ये तीन अनुच्छेद उच्चतम न्यायालय को देश का सबसे शक्तिशाली प्रतिष्ठान बनाते हैं। इससे संसद की शक्तियों पर यह पाबंदी लगती है कि संविधान के बुनियादी ढांचे में बदलाव नहीं किया जा सकता। उच्चतम न्यायालय की नौ सदस्यीय एक संविधान पीठ ने छह न्यायाधीशों के बहुमत से यह फैसला दिया था कि राज्य सरकारों को बर्खास्त करने के लिये राष्ट्रपति की संतुष्टि की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है। वर्ष 2006 में बिहार विधानसभा को भंग किये जाने को असंवैधानिक घोषित कर दिया गया था। उच्चतम न्यायालय ने यहां तक कहा है कि मौत की सजा पाने वाले व्यक्ति को माफी देने के मामलों में भी राष्ट्रपति या राज्यपाल का फैसला न्यायिक समीक्षा के अधीन होगा।

विशेष मामले और व्याख्या

सामान्य तौर पर शक्तियों के पृथक्कीकरण के सिद्धांतों को लेकर सहमति रही है। लेकिन व्यवहार में संविधान के तहत निर्धारित सीमाओं के शासन के किसी अंग द्वारा अतिक्रमण का विवाद भी उठता रहा है। केशवानंद भारती बनाम केरल सरकार के 1973 के मामले में ऐसा ही हुआ जब उच्चतम न्यायालय ने संविधान में संशोधन करने की विधायिका की शक्ति पर विचार किया। अदालत ने इस बात की पुष्टि की कि संविधान का बुनियादी ढांचा अपरिवर्तनीय है। संसद में कानून पारित करके भी उसमें संशोधन नहीं किया जा सकता। लेकिन 1975 में तत्कालीन सरकार ने उच्चतम न्यायालय की एक विशेष पीठ के सामने इस विचार को चुनौती दी। इंदिरा गांधी बनाम राजनारायण मामला यहां जिक्र किये जाने योग्य है जिसका फैसला कई कारणों से ऐतिहासिक था। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने लोकसभा में पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के निर्वाचन को इस आधार पर अमान्य घोषित कर दिया था कि उन्होंने चुनाव में जीत हासिल करने के लिये जनप्रतिनिधित्व कानून, 1951 के खंड 8 ए के तहत परिभाषित भ्रष्ट तरीकों का इस्तेमाल किया। श्रीमती गांधी ने उच्चतम न्यायालय में अपील की जिसने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले को कुछ शर्तों के साथ स्थगित कर दिया। इस अपील के लंबित रहते ही संसद ने संविधान (39वां संशोधन) कानून, 1975 पारित कर दिया। इस कानून में व्यवस्था की गयी थी कि चुनाव के समय प्रधानमंत्री के पद पर आसीन या इसके बाद प्रधानमंत्री नियुक्त व्यक्ति के संसद के किसी भी सदन में निर्वाचन को सवालों के घेरे में नहीं रखा जा सकता। ऐसे मामले को सिर्फ वैसे प्राधिकरण या संस्था के सामने और इस तरह से उठाया जा सकता है जिसकी व्यवस्था संसद निर्मित किसी कानून के तहत की गयी हो। दलील दी गयी कि संसद सर्वोपरि है और जनता की सार्वभौम इच्छा का प्रतिनिधित्व करती है। लिहाजा, संसद में जनप्रतिनिधि व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने या न्यायिक जांच के दायरे को सीमित करने के लिये किसी खास कानून में बदलाव का फैसला करते हैं तो न्यायपालिका को इसकी संवैधानिकता पर सवाल उठाने का कोई अधिकार नहीं है। लेकिन उच्चतम न्यायालय ने कहा कि इस संशोधन के प्रावधान संविधान के बुनियादी ढांचे का उल्लंघन करते हैं। उसने कहा कि विधायिका किसी विवाद का फैसला विधायी प्रक्रिया के अनुसार नहीं कर सकती। यह काम किसी न्यायिक संस्था को न्यायिक तरीके से करना चाहिये। कोई भी संविधान संशोधन एक विधायी साधन है। इसके जरिये न्यायिक शक्ति का उपयोग विधायिका के अधिकार क्षेत्र के बाहर होगा। इस समूचे प्रकरण में स्वतंत्र भारत के इतिहास में तीन बातें पहली बार हुईं। पहली बात यह कि किसी प्रधानमंत्री के निर्वाचन को रद्द किया गया। दूसरी, बुनियादी ढांचे के सिद्धांत के आधार पर एक संविधान संशोधन को रद्द किया गया। तीसरी बात यह कि प्रधानमंत्री के रद्द निर्वाचन को वैध करार देने के लिये चुनाव कानूनों को पिछले प्रभाव से संशोधित किया गया। मशहूर विधिवेत्ता ननी पालखीवाला की ठोस दलीलों के बाद भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश ने बुनियादी ढांचे के सिद्धांत को कायम रखा। उच्चतम न्यायालय में एक बार फिर इस बात

लॉर्ड एक्टन के शब्दों में, 'सत्ता भ्रष्ट करती है और निरंकुश सत्ता पूरी तरह भ्रष्ट बनाती है।' अरस्तू का दृढ़ विश्वास था कि अच्छी सरकार की शक्तियां सीमित होनी चाहिये। फ्रांसीसी चिंतक मोंटेस्क्यू ने अंकुश और संतुलन बरकरार रखने के लिये शक्तियों के पृथक्कीकरण का जो सिद्धांत दिया था वह आधुनिक लोकतांत्रिक देशों के संविधानों का दिशा-निर्देशक तत्व बन गया है। शक्तियों के पृथक्कीकरण का मतलब उनके बीच समान संतुलन भले ही नहीं हो मगर यह निस्संदेह एक-दूसरे पर लगाम लगाने का काम करता है।

की पुष्टि हुई कि संविधान के बुनियादी ढांचे में बदलाव नहीं किया जा सकता।

उच्चतम न्यायालय ने अपने एक फैसले में 99वें संविधान संशोधन और राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग को संविधान के विरुद्ध करार दिया। न्यायिक समीक्षा के सिद्धांत पर किसी संसदीय कानून को असंवैधानिक करार देकर निरस्त किये जाने का यह एक और ज्वलंत उदाहरण है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) कानून, 1989 पर उच्चतम न्यायालय का हाल का फैसला और इस अधिनियम में अनुच्छेद 18 ए जोड़ने का संसद का लोकलुभावन कदम देश की सर्वोच्च अदालत के 2018 के एक निर्णय की अवहेलना करता है। न्यायिक समीक्षा के सामने ये चुनौतियां हैं जो संविधान विशेषज्ञों के लिये विचार का एक विषय है।

न्यायिक सक्रियतावाद और अतिक्रमण

न्यायपालिका से उम्मीद की जाती है कि वह विधान के मामलों में विधायिका और कार्यकारी शासन के मामले में कार्यपालिका द्वारा छोड़ी गयी रिक्ति की भरपाई करेगी। न्यायपालिका जनता (जनहित याचिका) द्वारा या स्वत: भी सक्रिय हो सकती है। न्यायिक सक्रियतावाद वैसी स्थिति पर न्यायपालिका की प्रतिक्रिया है जिसमें समाधान के उपाय तुरंत किये जाने की जरूरत हो। यह एक समर्थनात्मक सिद्धांत है जिसमें मुस्तैदी, अध्यवसाय और सामंजस्य होना चाहिये। हाल के दशकों में न्यायपालिका पर कानूनों की एक खास ढंग से व्याख्या कर शासन के अन्य अंगों के अधिकार क्षेत्र में घुसपैठ करने के आरोप लगते रहे हैं। यह मामला ऐसी स्थिति तक पहुंच गया कि तीन दिसंबर, 2007 को लोकसभा में प्रक्रिया और कार्यवाही संचालन के नियम 193 के तहत इस पर गर्मागर्म चर्चा हुई। इस दौरान सदस्यों ने दलगत सीमाओं से ऊपर उठ कर विधायिका और कार्यपालिका के कामकाज में कथित दखलंदाजी पर न्यायपालिका की तीखी आलोचना की। अदालतें अक्सर मौजूदा कानूनों की व्याख्या कर कानून बनाने का प्रयास नहीं करतीं। वे शासन को वैसी नीतियां बनाने और लागू करने का निर्देश देकर ऐसा करती हैं जो किसी खास न्यायालय या न्यायालयों के विचारों के अनुरूप हो। इसके विपरीत न्यायपालिका यह भी महसूस करती है कि सरकार उसे नियंत्रित करने की कोशिश कर रही है। यह मामला 23 अगस्त, 2005 को काफी गंभीर हो गया। उस दिन निजी पेशेवर संस्थानों में आरक्षण जैसे भावनात्मक राजनीतिक मुद्दों से अलग रहने के सुझाव से नाराज होकर उच्चतम न्यायालय ने सरकार को सार्वजनिक तौर पर फटकार लगायी। तत्कालीन एटॉर्नी जनरल ने इस हद तक टिप्पणी कर दी कि 'आप हमें बतायें, हम अदालतों को भंग कर देंगे और आप जो भी चाहेंगे वैसा ही करेंगे।'

लेकिन कानून के शासन की रक्षा और न्यायपालिका की स्वतंत्रता के नाम पर उच्चतम न्यायालय ने कुछ ऐसे भी फैसले किये जो स्पष्टत: शासन के दूसरे अंगों को सौंपी गयी भूमिका में हस्तक्षेप करते हैं। इस आधार पर उच्चतम न्यायालय ने ऐसे निर्देश दिये जिन्हें कानून की ताकत प्राप्त है। उसने भारतीय बच्चों को विदेशियों द्वारा गोद लिये जाने के क्रम में पालन किये जाने वाले सिद्धांत और मानदंड तय किये। उसने इच्छा मृत्यु को इजाजत देने की प्रक्रिया का निर्धारण किया। उच्चतम न्यायालय ने विशाखा बनाम राजस्थान सरकार मामले में विधायी रिक्तता को स्वीकार किया और महिला सुरक्षा को लेकर अपनी चिंता जाहिर की। साथ ही उसने कार्यस्थल में यौन उत्पीड़न से महिलाओं के बचाव के लिये दिशानिर्देश भी बनाये।

इसी तरह डीके बसु बनाम पश्चिम बंगाल सरकार के मामले में उच्चतम न्यायालय ने गिरफ्तारी करते समय अपनाये जाने के लिये विस्तृत दिशानिर्देश दिये। उसने यातना के खिलाफ अधिकार समेत गिरफ्तार व्यक्ति के अधिकारों को भी परिभाषित किया। साथ ही उसने कहा कि अगर कोई विधायी रिक्तता है तो उसे कार्यपालिका को भरना चाहिये। यदि कार्यपालिका इस रिक्तता को नहीं भरती है तो यह काम न्यायपालिका को करना चाहिये। लेकिन यह डीसी वाधवा बनाम बिहार सरकार मामले में प्रतिपादित इस सिद्धांत के खिलाफ जाता है कि कार्यपालिका बेशक अध्यादेशों के जरिये विधायी रिक्तता को भरती हो मगर कानूनों का स्थान अध्यादेश नहीं ले सकते। बिहार की विधायिका ने कानून बनाने की अपनी भूमिका का त्याग कर दिया था और राज्य का शासन नियमित तौर पर लाये गये अध्यादेशों के जरिये चलाया जा रहा था। न्यायालय ने समूचे देश में अधीनस्थ न्यायपालिका की सेवाओं में एकरूपता लाने के लिये अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के गठन का केन्द्र सरकार को निर्देश दिया। अदालत को ऐसा करने का अधिकार नहीं है क्योंकि यह अनुच्छेद 312 के खिलाफ होगा जिसके तहत कानून के जरिये अखिल भारतीय सेवा के गठन का हक सिर्फ संसद को है।

उच्चतम न्यायालय की विशेष शक्तियां

भारत का संविधान अनुच्छेद 142 के जरिये उच्चतम न्यायालय को संपूर्ण न्याय करने के लिये एक विशेष शक्ति प्रदान करता है। उच्चतम न्यायालय ने 2 जी स्पेक्ट्रम

t.me/PDFKaAdda

घोटाला मामले में एक आदेश जारी किया कि कोई भी अदालत केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो और प्रवर्तन निदेशालय के जरिये जांच में रुकावट नहीं डालेगी। इस आदेश के बावजूद दिल्ली उच्च न्यायालय में रिट याचिकाएं दायर की गयीं। इस पर उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया कि लोक हित में 2 जी स्पेक्ट्रम मामले का निपटारा समय पर होना जरूरी है। इसलिये उस आदेश को वैध ठहराया गया जिसमें निर्देश दिया गया था कि सिर्फ उच्चतम न्यायालय ही अभियुक्तों की याचिकाओं पर सुनवाई करने के लिये सक्षम है। कोयला ब्लॉक मामले में भी इसी तरह अदालत की निगरानी में जांच की गयी। एक निर्देश जारी किया गया कि जांच या सुनवाई को रोकने अथवा बाधित करने के लिये कोई भी अपील उच्चतम न्यायालय के सामने ही की जा सकेगी। निर्देश में कहा गया कि कोई अन्य अदालत इस तरह की याचिका को मंजूर नहीं करेगी। वास्तव में भारत में समूचा पर्यावरणीय विधि शास्त्र उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 142 के उपयोग से ही विकसित हुआ। उच्चतम न्यायालय ने ताज महल के संगमरमर को आसपास के उद्योगों से निकलने वाले सल्फर के धुएं के कारण पीला होने से बचाया। इसके अलावा कई मामलों में उसने पीड़ित और प्रभावित व्यक्तियों को राहत भी मुहैया करायी। भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एमएन वेंकटचलैया की अध्यक्षता वाली पांच सदस्यीय पीठ ने वैधानिक प्रावधानों के दायरे से बाहर जाकर भोपाल गैस रिसाव के पीड़ितों को मुआवजा दिलाया जिसकी सराहना हुई। उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 142 का सहारा लेकर वैसे लोगों को सक्रियता से न्याय दिलाया जो विभिन्न सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक पृष्ठभूमियों के कारण इंसाफ से वंचित रहते हैं। उसने गरीबों और बेजुबानों की आवाज बन कर भारत में न्यायिक प्रणाली के विकास में मुख्य भूमिका अदा की है।

सुशासन का तकाज़ा है कि शासन के तीनों स्तंभों – कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के बीच संतुलन हो और वे एकदूसरे पर प्रभावी ढंग से अंकुश रखें। प्रधानमंत्री ने कहा है, 'वे एक ही परिवार के सदस्य हैं। हमें किसी को भी सही या गलत साबित नहीं करना है। हम अपनी ताकतों के साथ ही कमजोरियों को भी जानते हैं।' तीनों स्तंभों को इस बात पर विचार करना चाहिये कि बदले हुए परिवेश में 'मिनिमम गवर्नमेंट एंड मैक्सिमम गवर्नेंस' के मंत्र के जरिये 'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास' के लक्ष्य को साकार करने के लिये किस तरह आगे बढ़ा जाये। यह समावेशन की उस भावना को मजबूत करता है जिसे महात्मा गांधी ने प्रतिपादित किया था। गांधीजी ने कहा था, 'मैं मानता हूं कि लोकतंत्र कमजोर को मजबूत के बराबर मौका मुहैया कराता है।' यह डॉ आंबेडकर की उस संवैधानिक दृष्टि को भी साकार करेगा जिसमें हर नागरिक को समुचित महत्व और गरिमा सुनिश्चित करने के लिये कानून के शासन और अवसर की समानता के सिद्धांतों का समर्थन किया गया है।

निष्कर्ष

भारतीय संविधान ने शक्तियों के पृथक्कीकरण के सिद्धांत को उसकी संपूर्ण दृढ़ता के साथ स्वीकार नहीं किया है। लेकिन शासन के विभिन्न अंगों या शाखाओं के कामकाज में पर्याप्त भिन्नता रखी गयी है। सरकार के हर अंग को विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका से जुड़े काम करने होते हैं। इसके अलावा हर अंग कुछ हद तक दूसरे अंगों पर निर्भर है जिससे नियंत्रण और संतुलन कायम रहता है। इसका मतलब यह नहीं कि शक्तियों के पृथक्कीकरण के सिद्धांत को हमने पूरी तरह खारिज कर दिया है। इस सिद्धांत का पालन किया जाता है कि कोई अंग वैसे काम नहीं करेगा जो अनिवार्यत: दूसरे का है। इसका अपवाद सिर्फ वे मामले हैं जिनमें संविधान ने शक्ति किसी संस्था में निहित की हो। मसलन, अध्यादेश जारी करने की शक्ति राष्ट्रपति या राज्यपाल में निहित की गयी है।

शासन का प्रभावी ढंग से काम करना उसके तीनों स्तंभों न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका पर निर्भर करता है। वास्तविक लोक कल्याण हासिल करने और संवैधानिक तंत्र के सुचारू ढंग से कामकाज के लिये तीनों स्तंभों के बीच टकराव के बजाय संतुलन बहुत जरूरी है। भारत में संविधान की सर्वोच्चता को बरकरार रखा गया है। संसद की शक्तियां संविधान के तहत तय दायरे के भीतर ही होती हैं। सवाल संसदीय या न्यायिक सर्वोच्चता का नहीं है। वास्तव में सवाल विभिन्न स्तंभों के बीच एकदूसरे के दायरे में दखलंदाजी के बिना संतुलन कायम करने और प्रभावी शासन मुहैया कराने का है जिससे लोकतांत्रिक ढांचा परिपुष्ट और मजबूत हो तथा लोकहित को सुविचारित ढंग से कायम रखा और सर्वोपरि माना जाये। ❑

सुशासन का तकाजा है कि शासन के तीनों स्तंभों – कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के बीच संतुलन हो और वे एकदूसरे पर प्रभावी ढंग से अंकुश रखें। न्यायपालिका न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का इस्तेमाल कर निष्पक्षता के सिद्धांत के आधार पर संवैधानिक प्रावधानों और कानून के शासन के सुस्थापित सिद्धांतों के आलोक में विधायिका और कार्यपालिका की चूक और गड़बड़ी पर फैसला करती है। न्यायपालिका को दिया गया यह विशेष अधिकार उसकी इस जिम्मेदारी को भी बढ़ाता है कि वह न्यायिक समीक्षा के शक्ति का इस्तेमाल करते समय ज्यादा सावधान और सचेत रहे।

संदर्भ

1. रंजन सुधांशु। 'जस्टिस, जूडोक्रेसी एंड डेमोक्रेसी इन इंडिया', रूटलेज, नयी दिल्ली (2012)
2. चौधरी सुजीत, खोसला माधव, मेहता प्रताप भानु। 'द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ द इंडियन कांस्टीट्यूशन', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली (2016)
3. साठे एसपी। 'एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ', लेक्सिसनेक्सिस, नयी दिल्ली, सातवां संस्करण (2006)
4. खुर्शीद सलमान, लूथरा सिद्धार्थ, मलिक लोकेन्द्र, बेदी श्रुति। 'जूडिशियल रिव्यू प्रॉसेस, पॉवर्स एंड प्रॉब्लम्स' कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली (2020)
5. धवन राजीव। 'द कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया: मिरेकल, सरेंडर, होप', लेक्सिसनेक्सिस, गुड़गांव (2017)
6. https://www.outlookindia.com/website/story/after-ravi-shankar-cjis-tug-of-war-judicial-activism-pm-modi-bats-for-cooperatio/304838
7. https://www.mkgandhi.org/articles/democracy.htm

विदेश संबंध और भारतीय संविधान

मनोज कुमार सिन्हा

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप राष्ट्रों के बीच प्रणालीगत परस्पर निर्भरता विस्तृत और गहरी हुई है और यही कारण है कि आज दुनिया का कोई भी देश अंतरराष्ट्रीय कानून के बुनियादी सिद्धांतों की अनदेखी नहीं कर सकता। वैश्वीकरण को प्रौद्योगिकी और संचार के क्षेत्र में तेजी से हो रही प्रगति से पृथक नहीं किया जा सकता है, जिसके कारण विश्व सिमट गया है। हालांकि, अंतरराष्ट्रीय नियम कानून के पालन के बिना निष्पक्ष विश्व व्यवस्था के आदर्श की प्राप्ति नहीं होगी। इस उद्देश्य के लिए आवश्यक है कि राष्ट्रीय अधिकार क्षेत्र से परे आतंकवाद, मानवाधिकार, पर्यावरण क्षरण, अंतरराष्ट्रीय व्यापार और प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग की समस्याओं का सामना करने के लिए समान दृष्टिकोण खोजे जाएं। इस प्रकार, 21 वीं सदी में अंतरराष्ट्रीय कानून का महत्व कई गुना बढ़ गया है। विदेश सम्बन्ध, व्यापार, पर्यावरण, संचार, पारिस्थितिकी या अर्थव्यवस्था से जुड़े मामलों में कोई भी देश खुद को शेष दुनिया से अलग नहीं कर सकता है। संप्रभु राज्य अंतरराष्ट्रीय, क्षेत्रीय और उप-क्षेत्रीय स्तरों पर संधियों की रुपरेखा तैयार करने के लिए अंतरराष्ट्रीय वार्ताओं में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। सौभाग्यवश, भारत संधि-रचना प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और यह सुनिश्चित करता है कि गरीब और विकासशील देशों के हितों की रक्षा हो। अंतरराष्ट्रीय कानून के विकास और संहिताकरण में पश्चिमी आधिपत्य धीरे-धीरे घट रहा है जिसका अधिकांश श्रेय एशिया, अफ्रीका और अन्य महाद्वीपों के देशों की सक्रिय भागीदारी को जाता है। भारत संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के समय से इसका एक प्रबल समर्थक रहा है और इस संस्था में इसका अपार विश्वास है।

संविधान और अंतरराष्ट्रीय संबंध

पश्चिमी विद्वानों द्वारा अंतरराष्ट्रीय कानून के यूरो केंद्रित होने का दावा शैक्षणिक आख्यानों में आम हो गया है। परन्तु , वास्तव में अंतरराष्ट्रीय कानून की जड़ों को सुदूर प्राचीन भारत और अन्य प्राचीन सभ्यताओं में भी देखा जा सकता है। व्यक्ति की गरिमा का सम्मान और समाज में शांति और सद्भाव के लिए प्रयास भारतीय संस्कृति का एक स्थायी अंग रहा है। भारतीय संस्कृति का सृजन विविध संस्कृतियों और धर्मों के मिलन से हुआ है। हमारी परंपरा में एकता और सार्वभौमिकता की भावना सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। ऋग्वेद में कहा गया है, "सभी मनुष्य एक ही जाति हैं" और विभिन्न परंपराओं, धर्मों, सत्य प्राप्ति के मार्गों की मान्यताओं का सदैव सम्मान किया गया है। हमारा मार्गदर्शक सिद्धांत "सर्व धर्म सम्मान" रहा है। प्राचीन भारत में,

लेखक भारतीय विधि संस्थान, नई दिल्ली के निदेशक हैं। ईमेल: manoj_kumarsinha@yahoo.com

सामाजिक सेवाओं जैसे शिक्षा, जन स्वास्थ्य, बेरोज़गारी, वृद्धावस्था, वैधव्य, अनाथालय और गरीबी उन्मूलन के लिए व्यापक सुरक्षा प्रावधान थे। यह माना जाता था कि राजा को राज्य और उसके संसाधनों का प्रतिनिधित्व करना आवश्यक था ताकि वे विद्या प्राप्ति को प्रोत्साहित कर सकें, नेत्रहीनों, निर्बल, वृद्ध और विधवाओं की देखभाल कर सकें और बेरोज़गारों को रोज़गार दिला सकें।

भारतीय संविधान के भाग III में व्यक्तियों के लिए कुछ अधिकार प्रदान किये गए हैं, जिन्हें 'मौलिक अधिकारों' के रूप में जाना जाता है। 'मौलिक' शब्द का अर्थ है कि ये अधिकार सभी मनुष्यों में अंतर्निहित हैं और व्यक्ति के लिए अनिवार्य हैं। ये अधिकार एक सभ्य समाज के आधारभूत आदर्श का प्रतिनिधित्व करते हैं और संविधान निर्माताओं ने घोषणा की कि उन्हें संविधान में उच्च स्थान दिया जाना चाहिए। इन अधिकारों का उद्देश्य व्यक्ति की गरिमा की रक्षा करना और ऐसी परिस्थितियां पैदा करना है, जिसमें हर इंसान अपने व्यक्तित्व को पूरी तरह से विकसित कर सके। कोई भी कानून, अध्यादेश, प्रथा, उपयोग या प्रशासनिक आदेश किसी को उनके मौलिक अधिकारों से वंचित नहीं कर सकता या उनका हनन नहीं कर सकता है। यह भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों की मजबूत स्थिति को दर्शाता है। इसके अलावा, अब यह भारत में एक व्यवस्थित स्थिति बन गई है कि भारत के संविधान द्वारा प्रदत्त इन मौलिक अधिकारों को व्यक्तियों द्वारा छोड़ा नहीं जा सकता है। भारत का संविधान स्पष्ट रूप से ऐसा आधार प्रदान करता है, जिस पर विदेश नीति तैयार की जानी चाहिए और उसका सम्मान किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 51 का आधारभूत बल अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा, अंतरराष्ट्रीय संबंधों और अंतरराष्ट्रीय दायित्वों को बनाए रखना है, जो भारतीय संविधान के तहत, पूरी तरह से संघ के क्षेत्र में आते हैं। संविधान के अंतर्गत, भारतीय संघ की घटक इकाइयां का अंतरराष्ट्रीय अस्तित्व नहीं है। यद्यपि यह अनुच्छेद संविधान के भाग IV में आता है जो गैर-न्यायसंगत है, फिर भी, यह भारत में विदेश नीति के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। संविधान सभा के सदस्यों ने स्वीकार किया कि अंतरराष्ट्रीय शांति को बढ़ावा देने के लिए भारत के संकल्प की घोषणा आवश्यक थी। सदस्यों ने यह महसूस किया गया कि अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के अभाव में देश में शांति और आर्थिक और सामाजिक प्रगति नहीं हो सकती है। यह अनुच्छेद भारत को अन्य देशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रखने की अपेक्षा करता है। अनुच्छेद 51 (डी) जिसके अनुसार देश मध्यस्थता द्वारा अंतरराष्ट्रीय विवादों के समाधान खोजने के प्रयासों को प्रोत्साहन देगा की जड़ें अहिंसा के दर्शन में खोजी जा सकती हैं जो राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों समस्याओं के समाधान के लिए अहिंसा के नजरिये के उपयोग पर बल देता है। वास्तव में, अनुच्छेद 51 (सी) संधियों को लागू करने नहीं है, यह केवल राज्य को अंतर्देशीय संबंधों में "अंतरराष्ट्रीय कानून और संधि दायित्वों" के प्रति सम्मान को बढ़ावा देने के लिए बाध्य करता है। यह निर्दिष्ट नहीं करता है कि भारत द्वारा अंतरराष्ट्रीय संधियों या समझौतों के करार में अनुच्छेद 253 के तहत उचित विधान के बिना राष्ट्रीय कानून का प्रभाव होगा। अनुच्छेद 253 में घोषित किया गया है,

"इस अध्याय के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, संसद को किसी अन्य देश या देशों या अन्य निकाय में किए गए किसी विनिश्चय के कार्यान्वयन लिए भारत के सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए कोई भी विधि बनाने की शक्ति है।"

अनुच्छेद 253 को एक "परिवर्तन सिद्धांत" के रूप में माना जा सकता है जो अनिवार्य रूप से एक प्रत्यक्षवादी-द्वैतवादी स्थिति है। यह अनुच्छेद 51 (सी) अनुच्छेद में घोषित उद्देश्यों यानि संधि निर्धारण और संधियों के कार्यान्वयन के अनुरूप है। संधियां भारत में स्व-निष्पादित नहीं है और अदालत में संधि को लागू करने के लिए, संसद को संविधान के अनुच्छेद 253 के तहत विधान अपनाना होता है। अनुच्छेद 246 संघ और राज्यों के बीच वैधानिक अधिकार के वितरण को प्रभावित करता है। अनुच्छेद 246 (1) में कहा गया है,

"...संसद को सातवीं अनुसूची की सूचि-1 में ("संघ सूची में") में शामिल किसी भी विषय के संबंध में कानून बनाने की अनन्य शक्ति है।"

भारतीय न्यायपालिका और अंतरराष्ट्रीय कानून

अनुच्छेद 51 (सी) भली भांति स्थापित उस सिद्धांत से डिगता नहीं है कि हर राज्य अंतरराष्ट्रीय कानून के सिद्धांतों से परिमित है। तकनीकी रूप से, संधियों से उत्पन्न होने वाले दायित्वों को भारत में न्यायिक रूप से लागू नहीं किया जाता है जब तक कि वे कानून द्वारा समर्थित न हो। फिर भी, कई निर्णयों से पता चला है कि कानून में किसी संधि को शामिल करने की आवश्यकता नहीं है यदि उसका कार्यान्वयन प्रशासनिक स्तर पर संभव है और वह भी वैधानिक समर्थन के बिना। सर्वोच्च न्यायालय से अभियोग कानूनों का एक करीबी विश्लेषण समावेशन के सिद्धांत का पक्षधर प्रतीत होता है।

दिलचस्प बात यह है कि घरेलू कानून की व्याख्या करने के उद्देश्य से न्यायालयों में अंतरराष्ट्रीय संधियों के प्रावधानो की सहायता ली गयी। वर्षों से भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने कानूनी कार्यवाही को संचालित करने के लिए व्यक्तियों की अधिस्थिति की कठिनता को बहुत अधिक उदार बनाया है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों ने प्रशासनिक कार्रवाई की उदार समीक्षा के माध्यम से मानव अधिकारों के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित किया। इस तरह के उदारीकरण के कारण ऐसे मामलों में जनहित याचिका और क्षेत्राधिकार के नए स्वरूपों का उदय हुआ जैसे कि पत्रात्मक क्षेत्राधिकार जिसमें अदालतें पत्रिकाओं या अखबारों में प्रकाशित ख़बरों या रिपोर्टों या व्यक्तियों से प्राप्त पोस्टकार्डो या टेलीग्रामों के आधार पर भी कार्य करती हैं और इसमें जरूरतमंदों को अनिवार्य कानूनी सहायता का प्रावधान भी है। भारतीय न्यायपालिका ने भी मानव अधिकारों के अन्य प्रमुख क्षेत्रों की सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, जिसमें जीवन का अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति और भाषा की स्वतंत्रता और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा शामिल है।

सर्वोच्च न्यायालय ने समय समय पर यह स्पष्ट किया है कि अंतरराष्ट्रीय कानून के नियमों को राष्ट्रीय कानून में शामिल किया जाना चाहिए, यहां तक कि बिना कानून के, बशर्ते कि उनका संसद के कार्यों के साथ टकराव न हो। जब उनमें टकराव हुआ, तो गणतंत्र की संप्रभुता और अखंडता और कानूनों को बनाने के लिए गठित विधायिकाओं की सर्वोच्चता को बाहरी नियमों के अधीन नहीं किया जा सका। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निगमन के सिद्धांत अपनाने में संघ के राज्यों को शामिल किया गया था जिससे कि नियमपत्र को पूरे देश में लागू किया जा सके बशर्ते कि घरेलू कानून के साथ कोई टकराव न हो। हालांकि, संसद ने अंतरराष्ट्रीय कानून पर अंतिम अधिकार क्षेत्र को बरकरार रखा। विशाखा और अन्य बनाम राजस्थान राज्य में, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने परिवर्तन सिद्धांत से निगमन सिद्धांत की ओर बढ़ता जान पड़ा। अदालत उस मामले में चिंतित थी कि कामकाजी महिलाओं को कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से बचाया जा सके ताकि उनके मौलिक अधिकारों को सार्थक बनाया जा सके। संविधान के अनुच्छेद 14,15,19 (1) (जी) पर भरोसा करते हुए, अदालत ने कहा कि "कोई भी अंतरराष्ट्रीय संधिपत्र जो मौलिक अधिकारों के विरुद्ध न हो और इस भावना के साथ सामंजस्य में हो उसे इन प्रावधानों के अर्थ और विषयसामग्री को विस्तृत रूप देने के लिए पढ़ा जाना चाहिए जिससे संवैधानिक गारंटी के उद्देश्य को बढ़ावा मिले।"

भारत में मानवाधिकार न्यायशास्त्र एक ऐसे चरण में पहुंच गया है जहां कोई भी आसानी से कह सकता है कि भारतीय संविधान मानव गरिमा के मौलिक अधिकार को मान्यता देता है। मानव गरिमा का मौलिक अधिकार सीधे तौर पर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 से उपजता है। मेनका गांधी बनाम भारत संघ से पहले, अनुच्छेद 21 में निहित मौलिक अधिकार को एक बहुत ही संकीर्ण और अनुतापी अर्थ दिया गया था। लेकिन मेनका गांधी फैसले ने मानवाधिकार न्यायशास्त्र को एक नई दिशा दी। इसने यह निर्धारित किया कि केवल कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया होनी चाहिए, बल्कि यह प्रक्रिया भी तर्कसंगत उचित और न्यायपूर्ण होनी चाहिए, अन्यथा कानून अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करेगा। अपने विभिन्न निर्णयों के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय ने आवश्यक मानवाधिकारों को न्यायसंगत मौलिक अधिकारों के रूप में युक्तिसंगत बनाया। न्यायालय ने जनहित याचिका के माध्यम से न्याय तक पहुंच के अधिकार को समृद्ध और विस्तृत किया है, आम आदमी की पहुंच से बाहर सर्वोच्च न्यायालय को पत्रात्मक क्षेत्राधिकार जैसे नवाचारों के माध्यम से एक गरीब आदमी के न्यायालय में बदल दिया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मानवाधिकारों के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की गयी है। मुख्य जोर गरीबी और बदहाली का जीवन जीने वाले अपार जनमानस के लिए बुनियादी नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को अर्थपूर्ण बनाने पर रहा है जिनके लिए इन बुनियादी मानवाधिकारों का निरंतर अभाव और शोषण के कारण अब तक कोई अर्थ या महत्व नहीं था।

t.me/PDFKaAdda

निष्कर्ष

भारतीय संवैधानिक प्रणाली मानव अधिकारों सहित लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति सुदृढ़ प्रतिबद्धता पर आधारित है। आज, न्यायपालिका मानव अधिकारों को बढ़ावा देने और उनकी रक्षा करने में बहुत सक्रिय है। यह स्पष्ट करना उचित है कि ये सिद्धांत भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान और भारत की विदेश नीति की अभिव्यक्ति और विस्तार में धीरे-धीरे विकसित हुए थे। संविधान के अनुच्छेद 51 ने अंतरराष्ट्रीय समुदाय द्वारा देश के लिए अच्छा नाम और सम्मान अर्जित किया और अंतरराष्ट्रीय संगठनों के साथ विकासशील देशों के हितों के समर्थन को मजबूती प्रदान करने में भी मदद की। ❑

महिला अधिकार : चिंतन, प्रतिबद्धता और कार्रवाई

डॉ के श्यामला

भारतीय संविधान के सात दशक पूरे हो जाने के बाद भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष समानता लाने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत सरकार के संकल्प और कार्रवाई का जायजा लेना उचित होगा। भारत ने स्त्री-पुरुष समानता सुनिश्चित करने के लिए अनेक अंतरराष्ट्रीय संधियां और मानवाधिकार संकल्पों पर दस्तखत किये हैं।

हमारे संविधान की प्रस्तावना में प्रतिष्ठित इसके मूल सिद्धांत न सिर्फ सामाजिक समानता की गारंटी देते हैं, बल्कि सामाजिक न्याय सुनिश्चत करते हैं और महिलाओं की गरिमा बढ़ाते हैं। संविधान के भाग-3 में दिये गये मूल अधिकार अनुच्छेद 14, 15(1) और 16(2) के माध्यम से लिंग के आधार पर भेदभाव से संरक्षण सुनिश्चित करते हैं। संविधान के भाग 4 में दिये गये राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 39(क), अनुच्छेद 39(ग) और अनुच्छेद 42 इस बात का निर्देश देते हैं कि भारत की शासन व्यवस्था अपने कानून और नीति में स्त्री-पुरुष समानता सुनिश्चित करेगी। अनुच्छे 51 क (3) देश के नागरिकों को यह मूल कर्त्तव्य सौंपता है कि वे महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध किसी व्यवहार का परित्याग करें और भारत के सभी लोगों के बीच सद्भाव और भाईचारे की भावना का विकास करें। भारत के संविधान में कई अन्य प्रावधान भी हैं जो राज्य को महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान करने का अधिकार देते हैं (अनुच्छेद 15(3) पंचायतों और नगरपालिकाओं में महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण (अनुच्छेद 243) आदि)।

भारतीय संविधान के सात दशक पूरे हो जाने के बाद भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष समानता लाने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत सरकार के संकल्प और कार्रवाई का जायजा लेना उचित होगा। भारत ने स्त्री-पुरुष समानता सुनिश्चित करने के लिए अनेक अंतरराष्ट्रीय संधियां और मानवाधिकार संकल्पों पर दस्तखत किये हैं। कुछ महत्वपूर्ण संधियां जिनके पालन का भारत ने संकल्प लिया है इस प्रकार हैं: महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने की 1993 की संधि (सीईडीएडब्लू), मैक्सिको कार्रवाई योजना 1975, नैरोबी प्रगतिशील रणनीति 1985, बीजिंग घोषणा और कार्रवाई मंच 1995 व 2020। भारत ने संयुक्त राष्ट्र महिला शांति और सुरक्षा (डब्लूपीएस) एजेंडा को भी स्वीकार किया है और डब्लूपीएस राष्ट्रीय कार्रवाई योजना को अपनाने के प्रति वचनबद्धता व्यक्त की है। भारत की ओर से महिलाओं, शांति और सुरक्षा पर संयुक्त राष्ट्र के डब्लू पी एस संकल्प (एस/आरईएस/1325) को लागू करने की प्रतिबद्धता भी व्यक्त की जा चुकी है।

संवैधानिक सुरक्षाओं और अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं के बावजूद भारतीय संकल्पों की अंतरराष्ट्रीय मंचों पर ईमानदारी से कार्रवाई न करने, कारगर कानूनी ढांचे की कमी, महिलाओं पर अत्याचार के मामलों के निटारे में देरी तथा सुरक्षा और संरक्षण प्रणाली की कमी आदि को लेकर आलोचना की गयी। महिलाओं के खिलाफ अपराध के बढ़ते आंकड़ों हमें बीते वर्षों में भारत की प्रतिबद्धताओं और कार्रवाई के बारे में चिंतन करने के अपने कर्त्तव्य की याद दिलाते हैं।

स्त्री-पुरुष समानता को बढ़ावा देने वाले संवैधानिक प्रावधान

- प्रस्तावना : समाजवाद, अवसरों और संसाधनों का समता के आधार पर वितरण, सामाजिक न्याय, व्यक्ति की गरिमा सुनिश्चित करना
- अनुच्छेद 14 : कानून के समक्ष समानता और कानूनों का एक समान संरक्षण?
- अनुच्छेद 15 (1) : लिंग के आधार पर भेदभाव पर रोक
- अनुच्छेद 15 (3) : महिलाओं और बच्चों के बारे में विशेष प्रावधान करने के लिए राज्य को सशक्त करना
- अनुच्छेद 16 (2) : सरकारी नौकरी के मामले में अवसर की समानता, लिंग के आधार पर भेदभाव पर रोक
- अनुच्छेद 38 : राज्य सामाजिक न्याय और अवसरों की समानता के साथ जन कल्याण को बढ़ावा देने के लिए सामाजिक व्यवस्था कायम करेगा
- अनुच्छेद 39क : समान न्याय और मुफ्त कानूनी सहायता :
- अनुच्छेद 39 (क) : पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार
- अनुच्छेद 42 : काम करने के लिए न्यायोचित और मानवोचित स्थितियां और महिलाओं को प्रसूति सहायता
- अनुच्छेद 51क(3) : भारत के सभी

लेखिका एसोशिएट प्रोफेसर (विधि) हैं और रांची के राष्ट्रीय विधि अध्ययन और अनुसंधान विश्वविद्यालय में संवैधानिक विधि पढ़ाती हैं।
ईमेलः k.syamala@nusrlranchi.ac.in

लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हो।

- अनुच्छेद 243 (घ) (3) और (4) 243 (3) और (4) : पंचायतों और नगरपालिकाओं में महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण

स्त्री-पुरुष समानता को बढ़ावा देने के लिए विधायी प्रावधान

- भारतीय दंड संहिता : धारा 376 - बलात्कार, धारा 363 से 373 - विभिन्न उद्देश्यों से अपहरण और अगवा करना, धारा 302/304-बी-दहेज के लिए नरहत्या, दहेज हत्या या इसका प्रयास, धारा 498-क-मानसिक और शारीरिक दोनों तरह का उत्पीड़न, धारा 354 - छेड़छाड़, धारा 509 - यौन उत्पीड़न।
- विशेष कानून (एसएलएल)
    - कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948
    - बागान मजदूर अधिनियम, 1951
    - परिवार अदालत अधिनियम, 1954
    - हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955
    - हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956
    - देहव्यापार (रोकथाम) अधिनियम, 1956
    - प्रसूति लाभ अधिनियम, 1961
    - दहेज रोकथाम अधिनियम, 1961
    - गर्भावस्था का चिकित्सकीय समापन अधिनियम, 1971
    - ठेका मजदूर (विनियमन और उन्मूलन) अधिनियम, 1976
    - एकसमान मजदूरी अधिनियम, 1976
    - बाल विवाह रोकने का अधिनियम, 1976
    - महिलाओं के अश्लील प्रदर्शन को रोकने का कानून, 1986
    - सतीप्रथा उन्मूलन अधिनियम, 1987

अनुच्छेद 51 क (3) देश के नागरिकों को यह मूल कर्त्तव्य सौंपता है कि वे महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध किसी व्यवहार का परित्याग करें और भारत के सभी लोगों के बीच सद्भाव और भाईचारे की भावना का विकास करें। भारत के संविधान में कई अन्य प्रावधान भी हैं जो राज्य को महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान करने का अधिकार देते हैं (अनुच्छेद 15(3) पंचायतों और नगरपालिकाओं में महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण (अनुच्छेद 243) आदि)।

    - महिलाओं को घरेलू हिंसा से बचाव का अधिनियम, 2005 (पोक्सो)
    - यौन अपराधों से बच्चों के बचाव का कानून, 2012
    - कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न रोकने का कानून, 2013
    - आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2013
    - आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2018

इसके अलावा भी ऐसे कई कानून हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्त्री-पुरुष समानता की व्यवस्था करते हैं।

भारत सरकार की अन्य पहल

- अखिल भारतीय - एमरजेंसी रिस्पान्स सपोर्ट सिस्टम (ईआरएसएस), तमाम तरह की आपात स्थितियों के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचाना जाने वाला एक नंबर - 112 जिसमें संकट ग्रस्त व्यक्ति के स्थान की पहचान आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस से की जाती है।
- महिला सशक्तीकरण के लिए राष्ट्रीय नीति, 2001
- टेक्नोलाजी आधारित स्मार्ट पुलिस व्यवस्था और सुरक्षा प्रबंधन
- महिलाओं और बच्चों के लिए अश्लील सामग्री के बारे में रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए विशेष साइबर अपराध रिपोर्टिंग पोर्टल
- यौन अपराधियों का राष्ट्रीय डेटाबेस (20 सितंबर 2018 को शुरू) जिससे आदतन यौन अपराध करने वालों की जांच और उनपर नजर रखी जाती है।
- यौन अपराधियों की जांच और उनपर निगाह रखने की प्रणाली (आईटीएसएसओ) की 19 फरवरी 2019 को शुरुआत जिससे यौन उत्पीड़न के मामलों की आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2018 के अनुसार समयबद्ध जांच की जाएगी।
- यौन अपराधों के पीड़ितों को चिकित्सा सहायता, पुलिस की मदद, कानूनी सहायता, मनौवैज्ञानिक-सामाजिक परामर्श देने, अदालती मामलों के प्रबंधन और अस्थायी आश्रय देने के लिए देश भर में 700 से अधिक स्टॉप सेंटर को

t.me/PDFKaAdda

मंजूरी और 595 पूरी तरह काम करने लगे हैं।

भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लक्ष्य

- महिलाओं का उन्नयन, विकास और सशक्तीकरण
- राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक नीतियों के माध्यम से महिलाओं का रचनात्मक, अनुकूल और संरक्षणकारी माहौल
- महिलाओं को अपने मूल अधिकारों का फायदा उठाने की कानूनन और वास्तविक गारंटी
- महिलाओं को अपने विकास, रोज़गार और सशक्तीकरण का बराबरी के आधार पर मौका
- महिलाओं के खिलाफ तमाम तरह के भेदभाव और अपराधों को खत्म करने के लिए कानूनी और प्रशासनिक प्रणाली को मजबूत करना
- महिलाओं के खिलाफ भारत में व्याप्त भेदभाव और अपमानजनक तौर-तरीकों को समाप्त करने लिए सोशल रीइंजीनियरिंग महिलाओं और बालिकाओं के खिलाफ विभिन्न प्रकार की हिंसा और भेदभाव को समाप्त करना और
- महिलाओं को रोज़गार और वाणिज्य के सभी क्षेत्रों में प्रवेश करने के लिए प्रोत्साहित करना।

भारत सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) को प्राप्त करने के प्रति वचनबद्ध है जो स्त्री-पुरुष समानता में ऐतिहासिक बदलाव का अवसर उपलब्ध कराते हैं। महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन में देश के निवेश से स्त्री-पुरुष समानता के परिदृश्य में क्रांतिकारी बदलाव आएगा।

संकल्प

- भारत ने स्त्री-पुरुष समानता से संबंधित निम्नलिखित अंतरराष्ट्रीय संधियों का अनुमोदन किया है :
- मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा, 1948
- नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के बारे में अंतरराष्ट्रीय संधि, 1966
- आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के बारे में अंतरराष्ट्रीय संधि, 1966
- न्यायपालिका की स्वतंत्रता के बारे में बीजिंग सिद्धांत
- महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों के बारे में संधि, 1954
- महिलाओं के खिलाफ हिंसा पर घोषणा, 1993 (डीईवीडब्लू)
- महिलाओं के विरुद्ध तमाम तरह के भेद-भाव समाप्त करने की संधि (सीईडीएडब्लू)
- महिलाओं के विरुद्ध तमाम तरह के भेद-भाव समाप्त करने के लिए संयुक्त राष्ट्र की कमेटी (सीईडीएडब्लू)
- यूएन वूमेन
- संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का महिला, शांति और सुरक्षा पर संकल्प
- बीजिंग घोषणा और कार्रवाई मंच, 1995 और 2020

सरकार ने महिलाओं और बालिकाओं के अनैतिक व्यापार को रोकने, उनके यौन उत्पीड़न तथा घरेलू हिंसा पर रोक लगाने के लिए विशेष उपाय किये। जनवरी 2015 में भारत सरकार ने समाज में महिलाओं के महत्व और उन्हें शिक्षा के माध्यम से अधिकार संपन्न बनाने के लिए 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' अभियान की पहल की। महिलाओं और बालिकाओं को कौशल और रोज़गार कार्यक्रमों के बारे में जानकारी देने के लिए कई योजनाएं शुरू की गयीं। पूरे देश में सूक्ष्म वित्त सेवाओं के जरिए महिलाओं को, खास तौर पर ग्रामीण महिलाओं को विशेष सब्सिडी

देने की व्यवस्था की गयी है। इतना ही नहीं सरकार ने सुपरिभाषित लक्ष्यों के साथ राष्ट्रीय युवा नीति 2014 शुरू की और हर चरण पर नीतिगत कार्रवाई का सुझाव देने के लिए प्राथमिकता के 11 क्षेत्रों का पता लगाया।

कार्रवाई

भारत सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) को प्राप्त करने के प्रति वचनबद्ध है जो स्त्री-पुरुष समानता में ऐतिहासिक बदलाव का अवसर उपलब्ध कराते हैं। महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन में देश के निवेश से स्त्री-पुरुष समानता के परिदृश्य में क्रांतिकारी बदलाव आएगा। दुनिया में नौजवानों की बड़ी तादाद महिला श्रम शक्ति में भारत का हिस्सा सबसे बड़ा है। महिलाओं को घर-गृहस्थी की चारदीवारी में कैद करने वाले परम्परागत सामाजिक ढांचे का अतिक्रमण करके उन्हें श्रम शक्ति की मुख्यधारा में शामिल करने से कुशल श्रम शक्ति का प्रतिशत बढ़ेगा। महिलाओं को शक्तिसंपन्न बनाने से वे निर्णय करने, उद्यमिता, रोज़गार आदि की मुख्यधारा में आ जाएंगी जिससे देश की अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिलेगा।

महिलाओं के खिलाफ बढ़ रही अत्याचार, भेद-भाव और अपराध की घटनाएं उनके सामने घर की देहली लांघने में सबसे बड़ी बाधाएं हैं। छेड़-छाड़, बलात्कार, यौन हमले, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, स्त्री-पुरुष भेदभाव, घरेलू हिंसा आदि चिंता के विषय हैं जिनसे महिलाओं के सशक्तीकरण में बाधा आ रही है। ❑

संदर्भ

1. 2020 : ए क्रिटिकल इयर फॉर वूमन, जेंडर इक्वेलिटी एंड हैल्थ, संपादकीय, द लैनसेट, खंड 395, अंक 10217, पृ. 1, जनवरी 4, 2.2., https://www.thelancet.com/journals/lancet/article/PIIS0140-6736(19)33170-8/fulltext ij miyC/kA
2. आकांक्षा खुल्लर, द ल्यूकवॉर्म कमिटमेंट : इंडिया एंड जेंडर इक्वेलिटी इन सिक्यूरिटी अफेयर्स, जनवरी 23, 2020, द पिप्लामैट, https://thediplomat.com/2020/01/a-lukewarm-commitment-india-and-gender-equality-in-security-affairs/ पर उपलब्ध।
3. डॉ पी.जे. सुधाकर, प्रोटेक्शन ऑफ ह्यूमन राइट्स ऑफ वूमेन, भारत सरकार के पत्र सूचना कार्यालय द्वारा 11 मार्च, 2015 को प्रकाशित, https://pib.gov.in/newsite/mbErel.aspx?relid=k116782 पर उपलब्ध।
4. जेंडर इक्वेलिटी एंड एम्पावरमेंट, https://in.one.un.org/task-teams/gender-equality-and-empowerment/
5. जेंडर इक्वेलिटी एंड यूथ डिवेलपमेंट, यूएन इन इंडिया, https://in.one.un.org/gender-equality-and-youth-development/ पर उपलब्ध।
6. इंडियाज इनइक्वेलिटी क्राइसिस हर्ट्स गर्ल्स एंड वूमेन द मोस्ट, वर्ल्ड इकोनोमिक फोरम, 06 फरवरी, 2019, https://www.weforum.org/agenda/2019/02/india-s-inequality-crisis-hurts-girls-and-women-the-most पर उपलब्ध।
7. लैंडमार्क्स रिवोल्यूशन ऑन वूमेल, पीस एंड सिक्योरिटी, ओएसएजीआई, https://www.un.org/womenwatch/osagi/wps/ पर उपलब्ध।
8. नेशनल पॉलिसी फॉर द एम्पावरमेंट ऑफ वूमेन (2001), https://wcd.nic.in/womendevelopment/national-policy-women-empowerment पर उपलब्ध।
9. नो ट्रेंड ऑफ इनक्रीजिंग क्राइम अगेन्स्ट वूमेन इन इंडिया : श्री जी. किशन रेड्डी, 4 दिसंबर 2019 को पोस्ट किया, https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=k1594856 पर उपलब्ध।
10. सस्टेनेबल डिवेलपमेंट गोल्स (एसडीजीज), https://sustainabledevelopment.un.org/?menu=k1300 पर उपलब्ध।
11. द बीजिंग प्लेटफार्म फार एक्शन : इनस्पिरेशन देन एंड नाउ, https://beijing20.unwomen.org/en/about पर उपलब्ध।

REUNION IAS / V.K. TRIPATHI

IAS/PCS

(वैकल्पिक विषय)

राजनीति विज्ञान

सामान्य अध्ययन-II

राजव्यवस्था, अभिशासन, सामाजिक न्याय, अंतर्राष्ट्रीय संबंध

OFFLINE / ONLINE / PENDRIVE COURSE

GS-IV

नीतिशास्त्र/ETHICS

प्रारम्भिक परीक्षा सामान्य अध्ययन

राजव्यवस्था POLITY (PT)

B-11, FIRST FLOOR, IN FRONT OF MEERUT SWEETS, MUKHERJEE NAGAR, DELHI-9

9999421659-58

YH-1483/2020

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय
भारत सरकार
Help us to help you
नोवल कोरोनावायरस
(COVID-19)
खुद रहें सुरक्षित, दूसरों को रखें सुरक्षित
क्या करें और क्या ना करें
क्या करें
बार-बार हाथ धोएं। जब आपके हाथ स्पष्ट रूप से गंदे न हों, तब भी अपने हाथों को अल्कोहल - आधारित हैंड वॉश या साबुन और पानी से साफ करें
छींकते और खांसते समय, अपना मुंह व नाक टिशू/रूमाल से ढकें
प्रयोग के तुरंत बाद टिशू को किसी बंद डिब्बे में फेंक दें
अगर आपको बुखार, खांसी और सांस लेने में कठिनाई है तो डॉक्टर से संपर्क करें। डॉक्टर से मिलने के दौरान अपने मुंह और नाक को ढंकने के लिए मास्क/कपड़े का प्रयोग करें
अगर आप में कोरोना वायरस के लक्षण हैं, तो कृपया राज्य हेल्पलाइन नंबर या स्वास्थ्य मंत्रालय की 24X7 हेल्पलाइन नंबर 011-23978046 पर कॉल करें
भीड़-भाड़ वाली जगहों पर जाने से बचें
क्या न करें
यदि आपको खांसी और बुखार का अनुभव हो रहा हो, तो किसी के साथ संपर्क में ना आयें
अपनी आंख, नाक या मुंह को ना छूयें
सार्वजनिक स्थानों पर ना थूकें
हम सब साथ मिलकर कोरोनावायरस से लड़ सकते हैं
अधिक जानकारी के लिए
स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय भारत सरकार के 24X7 हेल्पलाइन नं. +91-11-2397 8046 पर कॉल करें या ई-मेल करें ncov2019@gmail.com
कोरोनावायरस (कोविड-19) के बारे में किसी भी तरह की जानकारी के लिए निम्नलिखित राष्ट्रीय हेल्पलाइन नंबर पर संपर्क कर सकते हैं–
24
1075
और
1800-112-545
mohfw.gov.in
@MoHFWIndia
@MoHFW_INDIA
mohfwindia

एक जीवंत दस्तावेज़

महिमा सिंह

संविधान की आत्मा इसके लोगों, इसके विषयों में निहित है। हमारा संविधान अपनी मजबूत नींव के साथ उतना ही जीवंत है जितना कि पांचवीं पीढ़ी की बदलती जरूरतों को पूरा करते हुए दशकों से अपनी जीवंतता बनाए रखना संभव है। इसके संदर्शन और संशोधनों के निहितार्थ हमारे दिन प्रतिदिन की जीवन शैली में प्रतिबिंबित होते हैं।

खुशबूदार ब्लैक कॉफी की चुस्कियों के साथ, किसी विश्व स्तरीय कंपनी की गगनचुंबी इमारत की, कांच की आदमकद खिड़की से बाहर झांकते हुए, नए जमाने का एक भारतीय युवक अपने पूर्वजों के योगदान पर सवाल उठाता है। वह इतिहास के पन्नों को पलटने की ज़हमत उठाना नहीं चाहता, ऐसा करना उसे बोझिल भी लगता है, इसलिए वह उनके योगदान को नकारते रहना पसंद करता है।

दूसरी ओर एक अन्य समकालीन भारतीय विचारक, उस स्वतंत्रता से प्रेरित होकर, जिसने हमें अपने राष्ट्र के उन असाधारण गुरुओं पर भी सवाल उठाने की आजादी दी है, जिन्हें देश की स्वाधीनता का श्रेय दिया जाना चाहिए, देश की आजादी के मौजूदा स्वरूप की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जानकारी देने के लिए तथ्यों का पिटारा खोल देता है।

हमारे पूर्वजों के ज्ञान और अनुभवों से प्रेरित होकर आधी शताब्दी तक विभिन्न स्तरों पर की गई दिमागी कसरत के बाद यह ठोस दस्तावेज़ बनाया जा सका। भारत का संविधान नाम के इस जादुई दस्तावेज़ के प्रत्येक शब्द को भारतीय लोगों के रक्त और मांस के साथ अंकित किया गया है, जिसमें भेदभाव, दुर्व्यवहार, पीड़ा, दुःख, बंधन के लिए कोई स्थान नहीं है, इसलिए यह मात्र एक दस्तावेज़ नहीं है। वास्तव में यह समय की कसौटी पर खरा उतरा एक जीवंत दस्तावेज़ है जो सामाजिक-वैचारिक संघर्षों के इस दौर में और भी अधिक प्रासंगिक हो गया है। चूंकि भारत विकासशील से विकसित राष्ट्र के रूप में परिवर्तित हो रहा है, और इसलिए इस जीवंत संविधान का दायरा अपनी पारंपरिक व्याख्या से कहीं अधिक गहरा हो जाता है। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि देश का प्रत्येक नागरिक इसमें छिपे हुए करिश्मे को महसूस करे।

संविधान की आत्मा इसके लोगों, इसके विषयों में निहित है। हमारा संविधान अपनी मजबूत नींव के साथ उतना ही जीवंत है जितना कि पांचवीं पीढ़ी की बदलती जरूरतों को पूरा करते हुए दशकों से अपनी जीवंतता बनाए रखना संभव है। इसके संदर्शन और संशोधनों के निहितार्थ हमारे दिन प्रतिदिन की जीवन शैली में प्रतिबिंबित होते हैं। संसद द्वारा किए गए 104 संशोधन इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि इसके प्रमुख रचनाकार डॉ बी. आर. आंबेडकर ने यह कहते हुए पूरी तरह स्पष्ट थे, कि - *कोई भी संविधान कितना भी अच्छा क्यों न हो यदि उसे लागू करने वाले बुरे हों तो उसका बुरा साबित होना निश्चित है और यदि संविधान को लागू करने वाले अच्छे हों तो वह बुरा होने के बावजूद अच्छा साबित हो सकता है।*

एक साधारण पाठक के लिए इस पर ध्यान देना दिलचस्प हो सकता है कि, भारत के लिए संवैधानिक दृष्टि से लिखा गया पहला दस्तावेज़ था- भारत का संविधान विधेयक 1895 जिसे स्वराज विधेयक के नाम से जाना जाता है। इसके मूल में बाल गंगाधर तिलक का यह नारा था - *स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मै इसे हासिल करके रहूंगा।* इसे कानूनी शैली में लिखा गया, जिसमें 110 अनुच्छेद शामिल थे। इसमें विभिन्न व्यक्तिगत अधिकारों को औपचारिक रूप से सुनिश्चित करने का पहली बार प्रयास किया गया था। इनमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार, संपत्ति का अधिकार, कानून की दृष्टि में समानता का अधिकार आदि शामिल थे। यह भी पहली बार था कि राष्ट्रवादियों के शक्ति के पृथक्करण के विचार का उल्लेख किया गया ताकि भारत जैसे विविधता वाले और विशाल देश में शासन को कुशल बनाया जा सके। दिलचस्प बात यह है कि बाद में शासन के विभिन्न स्तरों पर काफी हद तक ऐसा ही प्रावधान किया गया, जैसा कि भारत का संविधान 4 प्रकार की शक्तियों में विभाजित होगा यथा (क) संप्रभु सत्ता (ख) विधायी शक्ति (ग) न्यायिक शक्ति (घ) कार्यकारी शक्ति। हालांकि, इसके विपरीत चारों शक्तियां भारत की संसद में निहित की गई हैं, क्योंकि वह सर्वोच्च है। इसके अलावा, न्यायिक और कार्यकारी शक्तियों को विधायिका के अधीनस्थ के रूप में रखा गया। जहां एक ओर, इस विधेयक में सभी नागरिकों को राष्ट्र के भीतर और बाहर दुश्मनों से देश को बचाने के लिए, उनके लिए हथियार रखने की आवश्यकता का प्रावधान किया गया वहीं इस

लेखिका भारत के सर्वोच्च न्यायालय की लीगल काउंसिल और सदस्य हैं। ईमेल: advocatemahima7@gmail.com

t.me/PDFKaAdda

कानून की सदाशयता को बरकरार रखने के लिए नागरिकों द्वारा इसका विवेकपूर्ण उपयोग को सुनिश्चित किया गया था।

यद्यपि इस विधेयक के प्रावधानों के आधार पर ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड ही संप्रभु राष्ट्र बने रहे, लेकिन अब भी प्रत्येक भारतीय की नागरिकता संरक्षित और अक्षुण्ण बनी थी और यह केवल इन स्थितियों में खत्म हो हो सकती थी - (1) जो लोग किसी दूसरे देश की नागरिकता ले लें (2) जो लोग भारत सरकार के लाइसेंस के बिना विदेश में किसी दूसरे देश की सरकार से कोई पद, पेंशन या सम्मान स्वीकार कर लें (3) जिन लोगों को निर्वासन की सजा सुनाई गई हो। किसी भारतीय नागरिक के राजनीतिक अधिकार इन कारणों से निश्चित रूप से समाप्त हो जाते थे -(1) शारीरिक या नैतिक अक्षमता (2) जेल की सजा या इसके जारी रहने के दौरान निर्वासन की सजा। दुर्भाग्य से, विधेयक को कभी भी अधिनियम का रूप नहीं दिया गया तथा संकट और नहीं गहराया।

उदार राष्ट्रवादियों द्वारा राष्ट्रवादियों के स्वशासन के लिए बढ़ते आग्रह से, मॉर्ले मिंटो सुधारों का मार्ग प्रशस्त हुआ जिसे इंडिया काउंसिल्स एक्ट 1909 नाम से लाया गया था, जिसमें राजनीतिक परिस्थितियों, जिन्हें भारत में अशांति करार दिया गया, के कारण चरमपंथी राष्ट्रवादियों के कार्यों की निंदा की गई थी। लॉर्ड मिंटो ने महसूस किया कि स्वशासन के लिए कम से कम भारत के प्रति चिंता व्यक्त करने के लिए नरमपंथियों के साथ जुड़ने की आवश्यकता थी। वास्तव में इसके पीछे मंशा मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचिका प्रदान करके, विभाजित करने की थी और ऐसा भारत के इतिहास में पहली बार हो रहा था।

इसके एक दशक बाद, भारत सरकार अधिनियम-1919 आया, जिसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा खारिज कर दिया गया। एनी बेसेंट ने भी इंग्लैंड की इस पेशकश को घिनौनी और भारत के लिए अस्वीकार्य घोषित कर दिया और डॉ बी. आर. आंबेडकर ने इसे भारत का ब्रिटिश संविधान बताया।

इसके बाद, भारत के स्वतंत्रता संग्राम में काफी प्रगति हुई क्योंकि लॉर्ड इरविन ने भविष्य में स्वतंत्र उपनिवेश का दर्जा देने की घोषणा की, इंग्लैंड में सभी वर्गों से इसकी कड़ी आलोचना की गई। नतीजतन इरविन ने 1929 में राष्ट्रवादी नेताओं से मुलाकात कर उन्हें बताया कि स्वतंत्र उपनिवेश का दर्जा दिया जाना तय है लेकिन इसकी जल्द उम्मीद नहीं की जानी चाहिए। इसके बाद स्वतंत्र उपनिवेश की तात्कालिक मांग छोड़ दी गई, लेकिन 19 दिसंबर, 1929 को लाहौर में अपनी अगली बैठक में पूर्ण स्वराज के संकल्प के लिए 750 शब्दों का एक संक्षिप्त लेकिन प्रभावशाली दस्तावेज़ तैयार किया गया, जिसे 26 जनवरी, 1930 को सार्वजनिक किया गया था। यह, औपनिवेशिक शासन को उखाड़ फेंकने के लिए एक बड़े राजनीतिक आंदोलन की शुरुआत का संकेत था। उस समय तक नेताओं और देशवासियों को भी इस बात का दृढ़ अहसास हो गया था कि स्वतंत्रता हमारा अधिकार है, सबसे प्राचीन, सांस्कृतिक रूप से समृद्ध सभ्यताओं में से एक हमारे देश के लिए न्याय भी हमारा अधिकार है और यह कोई दान नहीं था जिसकी हमें भीख मांगने की जरूरत थी। प्रभावशाली शब्दों में लिखे गए और प्रचारित किए गए दस्तावेज़ के निम्न अंश से यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है:

भारत में ब्रिटिश सरकार ने न केवल भारतीय लोगों को उनकी स्वतंत्रता से वंचित किया है, बल्कि जनता का शोषण कर अपने को स्थापित किया है, और भारत को आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक रूप से बर्बाद किया है।

यह दस्तावेज़ भारतीय भाइयों और बहनों की कड़ी मेहनत, दुर्दशा और उथल-पुथल की वास्तविक तस्वीर को प्रतिबिंबित करता था और इसमें तथ्यों को पूरी तरह से स्पष्ट किया गया था और प्रचारित किया गया था कि (1) कैसे ब्रिटिश शासन ने भारतीयों की मेहनत की कमाई को लूटा था और अनुचित तरीके से कर लगाए थे जिससे गरीबों पर बहुत बोझ पड़ा था, (2) उसने ग्रामीण हस्तकला उद्योग को नष्ट कर दिया, (3) मुद्रा और विनिमय दर में धोखेबाजी की (4) भारत की राजनीतिक प्रतिभाओं को केवल गांव के दफ्तर और क्लर्क के कार्य तक सीमित करके उन्हें अवसाद में जीने को विवश किया, बड़े-बड़े लोगों को ब्रिटिश अधिकारियों के सामने झुकना पड़ता था (5) हमारी शिक्षा प्रणाली को बड़ी चतुराई से हैक कर लिया गया और हमें गुलामी की जंजीरों में जकड़ दिया, (6) हमें सामूहिक रूप से सम्मोहित करने के लिए एक ठोस प्रयास किया गया था ताकि हम अपने स्वयं के आध्यात्मिक और बौद्धिक अस्तित्व पर

t.me/PDFkaAdda

विश्वास न करें और मानने लगें कि हम इतने अच्छे नहीं थे कि खुद को एक नम्र शत्रु से भी बचा सकें।

शांतिपूर्वक यह घोषित किया गया था:

हम अपने देश के लिए इस चौगुनी आपदा पैदा करने वाले किसी भी नियम के आगे झुकना मनुष्य और भगवान के खिलाफ अपराध मानते हैं। हम मानते हैं कि स्वतंत्रता हासिल करने का हमारा सबसे प्रभावी तरीका हिंसा नहीं है। इसलिए, हम ब्रिटिश सरकार से सभी स्वैच्छिक संबंध, और करों का भुगतान न करने सहित सविनय अवज्ञा के लिए अपने को तैयार करेंगे। हमें विश्वास है कि अगर हम हिंसा किए बिना ऐसा कर सकते हैं तो इस अमानवीय नियम का अंत निश्चित है।

बाद में, संविधान को अंगीकार करने के लिए यह दिन लाहौर सत्र की स्मृति में चुना गया। हमारी इस यात्रा में कई मील के पत्थर आए जैसे कराची संकल्प 1931, पुना समझौता 1932, भारत सरकार अधिनियम 1935, संविधान के कई महत्वपूर्ण प्रारूप और अन्य प्रभावशाली दस्तावेज़ इत्यादि।

कमजोर वर्गों की मांगों पर बहुत चिंतन तथा विचार और कुछ दस्तावेज़ों जैसे अनुसूचित जातियों (अनुसूचित जातियों के महासंघ, 1944) की राजनीतिक मांगें, डॉ बी. आर. आंबेडकर द्वारा लिखित राज्य तथा अल्पसंख्यक और मौलिक अधिकार 1946 पर प्रारंभिक नोट आदि का अध्ययन एक ऐसा दस्तावेज़ तैयार करने के लिए किया गया था जो अंतिम पंक्ति में खड़े लोगों की जरूरतों का ख्याल रखेगा और उन पर सबसे पहले ध्यान देगा।

श्रीमान् नारायण अग्रवाल ने अपने गांधीवादी संविधान (गांधी द्वारा प्रस्तावना), 1946 में दुनिया भर के प्रख्यात विचारकों और लेखकों द्वारा विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक कार्यों का संपूर्ण तुलनात्मक अध्ययन समग्र मानव जाति तथा राष्ट्र को आमने सामने रखकर और अहिंसा तथा सत्ता के विकेंद्रीकरण को उचित महत्व देते हुए किया था। इस दस्तावेज़ में पंचायती राज के स्रोत के प्रावधान के बारे में लेखक ने लिखा है -ऐसे समाज में वास्तविक लोकतंत्र असंभव है जो विभाजित होता है। प्लूटो के शब्दों में कहें तो यह कि अमीरों के शहर और गरीबों के शहर के भीतर, ग्रामीणवाद के मूल अवयवों पर प्रकाश डालते हुए, विकेंद्रीकरण, जिसे राष्ट्रपिता, अधिनायकवादी या पूंजीवादी व्यवस्था के ठोस समाधान के रूप में देखते थे। यहां यह उचित रूप से बताया गया कि, ''सर्व-शक्तिशाली राष्ट्र, व्यक्तियों को नगण्य बना देता है। इसके अलावा, ऐसे अधिनायकवादी राष्ट्र, चाहे फासीवादी हों या समाजवादी, अंतत: एक या कुछ महामानवों द्वारा नियंत्रित होते हैं जो लाखों लोगों की नियति पर शासन करते हैं। लेकिन मनुष्य को जीवित रहने के लिए इस तरह के महामानवों से छुटकारा पाना चाहिए, हालांकि वे महान और उच्च इरादे वाले भी हो सकते हैं।'' गांधीवादी मूल्यों पर आधारित, अच्छी तरह से शोधित यह संकलन, इतिहास के पन्नों से झांकता है जैसा कि इसमें निर्भीकतापूर्वक कहा गया है - पूंजीवाद का अस्तित्व जैसे ही खतरे में पड़ता है, वह तुरंत उस मखमली दस्ताने को फेंक देता है जिसमें उसने लोहे की मुट्ठी को छिपाया होता है। विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग बांसुरीवादक को तब तक भुगतान करते रहते हैं जब तक वे उनकी धुनों को बजते रहना चाहते हैं।

पीढ़ियों की खोज और विजय को ध्यान में रखते हुए, स्वतंत्रता के लिए पैरवी करने वाले और मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ बी.आर. आंबेडकर ने भारत के संविधान के बारे में कहा था कि यह, आज तक, जीवंत लेकिन कभी-कभी अबोध लगने वाले लोगों के लिए कवच है और उनकी ओर टकटकी लगाकर देख रहा है जो लोकतंत्र तथा इन शक्तिशाली शब्दों-हम भारत के लोगों की प्रखरता और निर्भीकता को चुनौती देते हैं। ❑

पुस्तक चर्चा

हिस्टरी ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया

(खंड-1 अंग्रेजी) लेखक: डॉ तारा चंद

मूल्य: 175 रुपया, आईएसबीएन: 978-81-230-3238-2

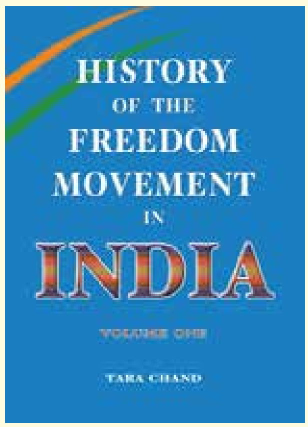

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन की समकालीन इतिहास के अन्य आंदोलनों से तुलना करने पर एक बड़ी अनोखी बात दिखाई देती है। इस आंदोलन ने महान भारतीय सभ्यता को एक आधुनिक राष्ट्र में ही नहीं बदला, बल्कि इतिहास में महान लोकप्रिय आंदोलनों के मानदंड भी नये सिरे से निर्धारित कर दिये। हमारा स्वतंत्रता आंदोलन विदेशी शासन के खिलाफ संघर्ष के साथ-साथ नैतिक अभियान भी था जो विदेशी और भारतीय दोनों ही तरह के शासकों के विरुद्ध था। साम्राज्यवादी अत्याचारों के प्रत्युत्तर में छुटपुट प्रतिक्रिया से शुरुआत करने के बाद इसने 19वीं सदी के मध्य में महात्मा गांधी के नेतृत्व में एक ऐसे जनांदोलन का रूप धारण कर लिया जिसकी हाल के इतिहास में कोई और मिसाल नहीं मिलती। इसमें सत्य और अहिंसा के जिन अभूतपूर्व अस्त्रों का उपयोग किया गया उनसे लाखों सीधे-सादे भारतीय, ताकतवर ब्रिटिश राज से लोहा लेने वाले शक्तिशाली योद्धा बन गये। भारत के स्वतंत्रता संग्राम ने दुनिया भर के नेताओं की कई पीढ़ियों को शांति और अहिंसा के मार्ग का अनुसरण करने की प्रेरणा दी है।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास पर चार खंडों की यह ग्रंथमाला अग्निपरीक्षा की उन घड़ियों का जाने-माने इतिहासकार और विद्वान डॉ तारा चंद द्वारा किया गया उत्कृष्ट विश्लेषण प्रस्तुत करती है। स्वतंत्रता आंदोलन का यह प्रामाणिक और अंतर्दृष्टि से संपन्न विश्लेषण चार दशकों से भी अधिक समय से विद्वानों के साथ-साथ आम पाठकों में भी बड़ा लोकप्रिय है। ❑

पंचायती राज व्यवस्था

डॉ चन्द्रशेखर प्राण

73वें संविधान संशोधन के माध्यम से पंचायतों को दो महत्वपूर्ण अधिकार व दायित्व सौंपे गये। जिसमें पहला तीनों स्तरों की पंचायतों को अपने-अपने क्षेत्र की आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय के लिए योजना बनाने का अधिकार तथा दूसरा इसी के लिए ऐसी परियोजनाओं को जो उन्हें सौंपी जाए (जिसमें ग्यारहवीं अनुसूची के 29 विषय भी शामिल हैं) उसे क्रियान्वित करना शामिल है। इन्हीं दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हेतु ही राज्य के विधान मण्डलों को संविधान द्वारा यह जिम्मेदारी दी गई है कि वह पंचायत को सेल्फ गवर्नमेंट (स्व-सरकार) के रूप में कार्य करने में समर्थ बनाने के लिए शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करें।

t.me/PDFkaAdda

पृष्ठभूमि

पंचायत जो भारत के ग्रामीण जीवन में प्रारम्भिक काल से गांव समाज की समस्या एवं परस्पर विवाद के समाधान के लिए एक सहज जीवन शैली और बाद में एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में व्यवहरित थी, वह 73वें संविधान संशोधन के बाद आज स्वतंत्र भारत की राज्य व्यवस्था की तीसरी सरकार के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। भारत के संविधान के भाग 9 में इसके लिए लगभग वह सारे प्रावधान किए गए हैं जो किसी भी संस्था को सरकार बनाने के लिए पर्याप्त होते हैं।

भारत का गांव एक सांस्कृतिक इकाई है। जो परिवार और पड़ोस से मिलकर बनती है। इस सांस्कृतिक इकाई का जो स्वरूप प्रारम्भिक रूप में विकसित हुआ वह गांव समाज है। भारत का यह गांव समाज दुनिया के बेहतर लोकतंत्र के रूप में चिह्नित होता रहा है। लार्ड मेटकाफ ने ग्राम समाज को छोटे-छोटे प्रजातंत्र के रूप में परिभाषित करते हुए कहा कि प्रत्येक समाज (ग्राम समाज) अपने आप में एक छोटा-सा स्वतंत्र राज्य होता है- उनके सुख का बहुत बड़ी हद तक जो साधन बनता है, उसके अन्तर्गत वे बड़ी मात्रा में स्वतंत्रता और स्वाधीनता का उपयोग करते हैं।

अपने प्रारम्भिक काल से गांव समाज ने पंचायत की परम्परा को संजोया और अपने स्वावलम्बन तथा आत्मनिर्भरता के लिए इसी को आधार बनाया। इतिहास के सभी कालों में यह परम्परा अक्षुण्ण रही है।

ऐतिहासिक संदर्भ

प्रागैतिहासिक काल से ही पंचायत परम्परा या जीवन शैली का प्रमाण अलग-अलग रूपों में मिलता है। वैदिक साहित्य में सभा और समिति का संदर्भ आया है जो इसी भावना की पुष्टि करता है। यह परम्परा इस काल में बहुत पुष्ट थी। इस काल में प्रत्येक गांव एक छोटा स्वायत्त राज्य था।

रामायण काल और महाभारत काल में भी पंचायतों का अस्तित्व पूरी तरह से प्रभावी था। पंचायत जो सामुदायिक विचार-विमर्श के मंच के रूप में अपनी पहचान बना चुकी थी, उसकी अभिव्यक्ति इस काल में विभिन्न रूपों में मिलती है। श्री अरविन्द के अनुसार सामुदायिक विचार-विमर्श के लिए यज्ञ और पूजा के लिए या युद्ध के सैन्य दल के रूप में 'जनसाधारण' (विश) एक सभा के रूप में एकत्र होते थे। उनकी ऐसी सभा ही दीर्घकाल तक, जनसमुदाय की शक्ति का चिह्न तथा सक्रिय सार्वजनिक जीवन का साधन रही।

मौर्यकाल में पंचायतें गांव जीवन की ही नहीं, अपितु समस्त भारतीय जीवन का अंग बन चुकी थी। चाणक्य की आदर्श ग्राम संगठन की परिकल्पना का आधार पंचायत ही थी। इस काल में आये चीनी यात्रियों के संस्मरणों में ग्राम पंचायतों की कार्य पद्धति की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है।

बौद्धकाल एवं गुप्तकाल में पंचायत प्रणाली का विकास एक ऐसे रूप में हुआ, जिसने गांव जीवन को अधिक से अधिक खुशहाल बनाने का कार्य किया। इस काल में ग्राम सभा से आगे बढ़कर समितियों का विकास हो गया था। मध्य भारत में यदि इन्हें 'पंचमण्डली' कहा गया था, तो बिहार में इन्हें 'ग्राम जनपद' के नाम से जाना जाता था।

चोल राजवंश के लेखों से तमिल देश में सभा और समिति के कार्यों का विस्तृत विवरण अग्रहार गांवों के बारे में मिलता है। भरहटा शासन काल में भी पंचायतों का स्वरूप बदस्तूर बना रहा और उसके फैसलों पर ब्राह्मण ही नहीं, अस्पृश्यों तक के हस्ताक्षर मिलते हैं।

आठवीं शताब्दी के उपरांत भारत पर जब मुगलों का राज हुआ तब धर्म और संस्कृति के भिन्न होते हुए भी वे यहां की संस्कृति से ज्यादा प्रभावित हुए। इनके शासकों ने गांव जीवन की इस स्वत: स्फूर्त व्यवस्था में कोई दखल नहीं दिया, बल्कि अपने स्थायित्व के लिए समय-समय पर इनका उपयोग ही किया।

अंग्रेजी राज में एक सोची समझी रणनीति के तहत उसके प्रारम्भिक काल से ही व्यापारी बनकर आये अंग्रज़ों ने, इस प्राचीन एवं

लेखक भारत सरकार के युवा कार्य एवं खेल मंत्रालय द्वारा संचालित नेहरू युवा केंद्र संगठन में राष्ट्रीय निदेशक रह चुके हैं। पंचायती राज व्यवस्था पर डॉ प्राण ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। ईमेल : cspran854@gmail.com

लोकप्रिय व्यवस्था पर सबसे अधिक चोट की, जिससे गांव समाज में टूटन और दरार पड़ गई, जिसका सबसे बड़ा खामियाजा उसकी समृद्धि और आत्मनिर्भरता पर पड़ा। गांव धीरे-धीरे परावलम्बी होने लगे। प्रसिद्ध इतिहासकार श्री रमेशचन्द्र दत्त ने इस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि भारत में ब्रिटिश राज्य का सबसे अफसोसजनक फल यह हुआ है कि उसने उस ग्राम राज्य की प्रथा को तहस नहस कर दिया, जो विश्व के सब देशों में सर्वप्रथम भारत में विकसित हुई और सबसे अधिक काल तक पनपी।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अंग्रेजी राज्य द्वारा एक बार फिर से स्थानीय सरकार के नाम पर, ग्राम पंचायतों के पुनर्गठन का प्रयोग शुरू किया गया। लार्ड मेयो (1870) तथा लार्ड रिपिन (1882) द्वारा इसके लिए शाही कमीशन आयोग (1909) की रिपोर्ट को सबसे ज्यादा अहमियत दी गई। किन्तु इस सबके पीछे अपनी केन्द्रीय सत्ता को मजबूत तथा लोकप्रिय बनाने का ही भाव प्रमुख रहा।

शाही कमीशन की रिपोर्ट तथा 1919 के इंडिया एक्ट के आने के बाद वर्ष 1920 में बने बाम्बे पंचायत एक्ट के साथ प्रांतीय सरकारों द्वारा अपने अपने पंचायत एक्ट बनाने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई और धीरे-धीरे लगभग सभी प्रांतों के पंचायत एक्ट बन गये। यहीं से विधिवत कानूनी पंचायतों की शुरुआत हुई।

स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान पंचायती व्यवस्था का सवाल भी उठा। लेकिन यह स्वर इतना प्रबल नहीं हो सका। महात्मा गांधी की प्रेरणा से अनेक देशी राजाओं द्वारा पंचायतीराज के पुनर्गठन का प्रयास छिटपुट रूप से भी चलता रहा।

आजादी के बाद संविधान निर्माण के समय, उसके निर्माताओं की दृष्टि में पंचायत को वह महत्व नहीं मिल सका, जो मिलना चाहिए था। इसके लिए बापू के प्रमुख अनुयायी श्रीमननारायण अग्रवाल ने 1946 में गांधीवादी संविधान का एक ड्राफ्ट भी तैयार किया था। जिसमें ग्राम, ब्लॉक, जिला, प्रांत व अखिल भारतीय स्तर पर पंचायत सरकार के गठन का प्रावधान था। जिसे संविधान सभा के सभी सदस्यों के संज्ञान में भी लाया गया था। महात्मा गांधी की दृष्टि में इसी को भारतीय संविधान का आधार बनाना चाहिए था लेकिन उनकी परिकल्पना का सम्मान, संविधान सभा नहीं कर सकी। संविधान सभा में लंबी बहस के बाद अनुच्छेद 40 के माध्यम से राज्य (भारत सरकार और संसद तथा राज्य की सरकार और विधान मण्डल) के रहमोकरम पर पंचायत को छोड़ दिया गया।

स्वतन्त्र भारत में पंचायत व्यवस्था

स्वतन्त्र भारत के शुरुआती दौर में कुछ राज्य सरकारों द्वारा पंचायतीराज की स्थापना का आधा अधूरा प्रयास तो किया गया, लेकिन जनसहभागिता और गांवों के विकास के लिए प्रधानमंत्री पं नेहरू द्वारा सामुदायिक विकास कार्यक्रम के रूप में एक नये धरातल की तलाश प्रारम्भ हो गई, जिसके चलते पंचायत परम्परा उपेक्षित हो गई। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के लक्ष्यों की पूर्ति में काफी पीछे रह जाने पर बलवंत राय मेहता कमेटी का गठन और उसकी संस्तुतियों के आधार पर एक बार फिर से पंचायतों का सहारा राज्यसत्ता को लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। 1959 में पं. नेहरू द्वारा त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था की नई शुरुआत की गई। लेकिन यह कोशिश बहुत दूर तक नहीं चल पाई। कुछ ही वर्ष बाद फिर से सन्नाटा छा गया। राज्य सरकारों के रहमो-करम पर छोड़ी गई पंचायत मरणासन्न स्थिति में पहुंच गई।

जय प्रकाश नारायण द्वारा पंचायतीराज के सही एवं प्रभावी स्वरूप के विकास के लिए कई महत्वपूर्ण सुझाव उस समय दिये गये थे और राज्य सरकारों को बाध्य करने के लिए पंचायतीराज को संवैधानिक मान्यता देने हेतु संविधान संशोधन का सुझाव भी दिया गया था। संविधान विशेषज्ञों से उनका आग्रह था कि यदि आप यह मानते हैं कि पंचायतीराज की संस्थायें अपने-अपने स्तर की सरकारें हैं और तदनुरूप भारतीय राज्य के केवल दो नहीं पांच अंग हैं तो इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक सोचना चाहिए कि संविधान को कैसे संशोधित किया जाय कि उसे उसमें योग्य स्थान का दर्जा मिले।

उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में एक आशंका जाहिर की थी कि यह भी संभव है कि पंचायतीराज का ढांचा तो खड़ा हो जाय लेकिन उसको कोई वास्तविक अधिकार न मिले। इस प्रकार का ढांचा आत्माविहीन शरीर के समान होगा। अन्ततः उनकी आशंका सही निकली, पंचायतीराज एक निर्जीव ढांचा बन कर रह गया।

इसके बाद तो एक लम्बा अन्तराल आया। करीब 20 वर्षों तक पंचायत व्यवस्था की चर्चा छिटपुट रूप में या दबे स्वर में कभी कभार जरूर उठती रही लेकिन सरकार की दृष्टि अपनी शक्ति को केन्द्रित करने में लगी रही। राजनीति का संकट, राष्ट्रीय संकट के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। राष्ट्रीय एकता के नाम पर शक्ति और सत्ता का केन्द्रीकृत स्वरूप अधिक विकसित हुआ। इस प्रक्रिया में गांव समाज और पंचायत परम्परा को ही सबसे अधिक झेलना पड़ा। वर्ष 1974 से जयप्रकाश नारायण

t.me/PDFKaAdda

के ही नेतृत्व में संपूर्ण क्रान्ति के राष्ट्रव्यापी आन्दोलन का उद्देश्य भारतीय लोकतंत्र को 'रियल' यानि वास्तविक एवं सुदृढ़ बनाना और जनता का सच्चाराज कायम करना बताया गया। सम्पूर्ण क्रान्ति के इसी उद्देश्य में सत्ता के विकेन्द्रीकरण को शामिल करते हुए जयप्रकाश नारायण ने 'ए मैनिफेस्टो फॉर बिहार' लिखा, इसमें उन्होंने पंचायतीराज व्यवस्था के माध्यम से आम आदमी की भागीदारी के साथ सच्चे लोकतंत्र की बात की। किन्तु यह प्रयास भी सफल नहीं हुआ। सरकार तो बदली लेकिन कोई व्यवस्थागत परिवर्तन नहीं हो सका।

वर्ष 1977 में जब जनता पार्टी की सरकार बनी, तब पंचायतीराज पर पुनर्विचार हेतु अशोक मेहता कमेटी (1978) का गठन किया गया। उसमें 'जय प्रकाश' के सुझाव को दृष्टि में रखते हुए पंचायतीराज के लिए संविधान संशोधन का सुझाव दिया गया तथा अपनी संस्तुतियों के साथ संविधान संशोधन का मसौदा भी प्रस्तुत किया, लेकिन जनता पार्टी की सरकार का कार्यकाल बहुत संक्षिप्त रहा, जिससे कोई सार्थक कार्यवाही नहीं हो सकी।

राजीव गांधी के आगमन के साथ पंचायत परम्परा के पुनरुत्थान का नया अध्याय फिर से प्रारम्भ हुआ। वे प्रारम्भिक वर्षों में ही पंचायतों की दुर्दशा का अनुभव करने लगे। साथ ही उन्होंने यह अनुभव किया कि 'जो विकास आया, जो इकोनॉमिक डेवलपमेन्ट हुई, उसकी जड़ ठीक तरह से लगी नहीं, क्योंकि यह फासला बहुत हो गया, योजना बनाने में, कार्यक्रम बनाने में और उसके इम्प्लीमेन्टेशन के प्वाइन्ट में अनेक विसंगतियां समझ में आयीं। इसी अनुभव के आधार पर उन्होंने संविधान संशोधन का संकल्प लिया। 15 मई 1989 को 64 वें संविधान संशोधन के रूप में लोक सभा में प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए उन्होंने भारतीय लोक सभा का आह्वान किया था– "हमें जनता में भरोसा है, जनता को ही अपनी किस्मत तय करनी है और इस देश की किस्मत भी। भारत के लोगों को आइये हम अधिकतम लोकतंत्र दें और अधिक सत्ता सुपुर्द करें।"

यह संशोधन उनके कार्यकाल में तो नहीं हो पाया, लेकिन उनके बाद, वर्ष 1992 में 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से स्व-सरकार (सेल्फ गवर्नमेंट) के रूप में नये पंचायतीराज की स्थापना का प्रयास प्रारम्भ हो गया। धीरे-धीरे सभी राज्यों के अधिनियमों में संविधान की मंशा के अनुरूप परिवर्तन किये गये और 1995 में नई पंचायती राज्य व्यवस्था के चुनाव अधिकांश राज्यों में सम्पन्न हो गये। इसी के साथ भारत के इतिहास में पंचायती राज का एक नया दौर प्रारम्भ हो गया।

73वां संविधान संशोधन: पंचायत को सरकार का दर्जा

पंचायतों को लोगों की 'अपनी सरकार' (सेल्फ गवर्नमेंट) के रूप में अब संवैधानिक दर्जा मिल गया है। संविधान के भाग 8 के पश्चात् भाग 9 जोड़कर उसमें अनुच्छेद 243 को समाविष्ट कर राज्य सरकारों को पंचायती राज व्यवस्था लागू करने के लिए बाध्य कर दिया गया है। इसी के साथ उसके स्वरूप और विस्तार को भी स्पष्ट किया गया है, जिसके अनुसार ही व्यवस्था लागू की जानी है। इस संशोधन के प्रमुख बिन्दु इस प्रकार हैं–

1. पूरे देश में ढांचागत एकरूपता लाने के लिए त्रिस्तरीय गांव, मध्यम (ब्लॉक) तथा जिला पंचायत व्यवस्था लागू।
2. कार्यकाल पांच वर्ष का। कार्यकाल समाप्ति के बाद 6 माह के भीतर चुनाव अनिवार्य। इस व्यवस्था को नियमित एवं निष्पक्ष तथा सुचारू रूप से संचालित करने के लिए एक संवैधानिक संस्था राज्य निर्वाचन आयोग का प्रावधान।
3. सभी स्तरों पर पंचायत के सदस्यों का चुनाव जनता द्वारा निर्वाचन। जनसंख्या के आधार पर समान अनुपात के अनुसार निर्वाचन क्षेत्र।
4. सभी स्तरों पर अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए उस क्षेत्र में उसकी जनसंख्या के अनुपात में सीट आरक्षित।
5. महिलाओं के लिए भी सभी स्तरों की पंचायतों में कुल सीटों का एक तिहाई भाग आरक्षित। यह व्यवस्था अध्यक्ष के पद हेतु भी।
6. पिछड़े वर्गों के आरक्षण का मुद्दा राज्य सरकारों के ऊपर छोड़ा गया।
7. संसाधनों की समुचित व्यवस्था हेतु वित्त आयोग का गठन तथा ऑडिट की समुचित व्यवस्था।
8. ग्राम पंचायत स्तर से लेकर जिला स्तर तक जन भागीदारी के साथ योजना बनाने के लिए जिला योजना समिति के गठन का प्रावधान।
9. ग्यारहवीं अनुसूची के माध्यम से विकास के 29 विभागों के कार्य पंचायतों के सुपुर्द।
10. सभी स्तर की पंचायतों के चुनाव में भाग लेने हेतु प्रत्याशियों की एक निश्चित आयु सीमा 21 वर्ष का निर्धारण।
11. ग्राम स्तर पर ग्राम सभा का गठन अनिवार्य। ग्राम से संबंधित मतदाता सूची में पंजीकृत व्यक्तियों से मिलकर गठित।

73वें संविधान संशोधन के माध्यम से पंचायतों को दो महत्वपूर्ण अधिकार व दायित्व सौंपे गये। जिसमें पहला तीनों स्तरों की पंचायतों को अपने-अपने क्षेत्र की आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय के लिए योजना बनाने का अधिकार तथा दूसरा इसी के लिए ऐसी परियोजनाओं को जो उन्हें सौंपी जाए (जिसमें ग्यारहवीं अनुसूची के 29 विषय भी शामिल हैं) उसे क्रियान्वित करना शामिल है। इन्हीं दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हेतु ही राज्य के विधान मण्डलों को संविधान द्वारा यह जिम्मेदारी दी गई है कि वह पंचायत को सेल्फ गवर्नमेंट (स्व-सरकार) के रूप में कार्य करने में समर्थ बनाने के लिए शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करें।

पंचायती राज की वर्तमान स्थिति

सच्ची आजादी, लोकतंत्र में जनता की प्रत्यक्ष भागीदारी तथा सत्ता का सही अर्थों में विकेन्द्रीकरण जैसी घोषणाओं के साथ आज से लगभग 25 वर्ष पूर्व देश में नए पंचायती राज को लागू किया गया था। तब से लेकर अब तक विभिन्न राज्यों में इस घोषणा को व्यवहार में उतारने की कोशिश अपने-अपने तरीके से की जाती रही है। वह कोशिश कितनी ईमानदारी के साथ की जाती रही अथवा वह कितनी सफल रही या असफल रही इस पर कई तरह के मतभेद हैं। कुल मिलाकर सच्चाई यही है कि जिस सोच और सपने के साथ नया पंचायती राज लाया गया है उनसे अभी वह कोसों दूर है। इसके कारण भी कई हैं। लेकिन इसमें जो सबसे बड़ा कारण है उसमें जहां एक ओर अभी तक पंचायतों को संविधान के अनुसार समुचित अधिकार और दायित्व का न प्राप्त होना है वहीं दूसरी ओर पंचायतों के प्रति लोगों की उदासीनता प्रमुख है, जो सर्वाधिक चिंता का विषय है।

यह उदासीनता इस अर्थ में नहीं कि पंचायत के चुनाव में लोगों की भागीदारी कम है बल्कि इस अर्थ में कि पंचायतों के कामकाज में लोगों की कोई खास रुचि नहीं है। यह अरुचि जहां एक ओर पंचायतों में व्याप्त अनियमितताओं के कारण है वहीं दूसरी ओर पंचायत के प्रति लोगों में स्वामित्व और अपनत्व का जो भाव आना चाहिए था वह अभी तक नहीं आ पाया है।

इसके चलते अधिकांश राज्यों में पंचायत का संस्थागत स्वरूप विकसित ही नहीं हो पा रहा है। जिसके परिणामस्वरूप पंचायत चुनाव में उसके अध्यक्ष का पद ही एकमात्र महत्त्वपूर्ण पद हो गया है। जिसके लिए छल, बल और धन का बड़े पैमाने पर प्रयोग हो रहा है। सामान्यतया पंचायत का मतलब सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन की एजेंसी तक सीमित होकर रह जाने से यह पद सर्वाधिक विवादित और संघर्षपूर्ण हो गया है और यही शक्ति प्रदर्शन का केन्द्र-बिन्दु बन गया है।

पंचायतों को 'सरकार' के रूप मे इसके लिए प्रतिष्ठित किया गया था कि जमीनी आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार जनभागीदारी के साथ स्थानीय स्तर पर योजना बनाई जा सके और उसे उसी स्तर पर क्रियान्वित किया जा सके। समावेशी और टिकाऊ विकास की यही पहली शर्त भी है। लेकिन विगत 25 वर्षों की इस यात्रा में यदि कुछ राज्यों को छोड़ दें तो अधिकांश राज्यों में पंचायतें अपने इस दायित्व के निर्वहन से कोसों दूर खड़ी हैं। उन्हें न तो इसके लायक बनाया गया और न तो सही अवसर और पर्याप्त साधन मुहैया कराए गए।

भारत सरकार की चिंता और उसके प्रयास

भारत सरकार के स्तर से पंचायतीराज व्यवस्था को संविधान की मंशा के अनुरूप तीसरे स्तर की सरकार के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए समय-समय पर आयोग एवं समूहों का गठन किया जाता रहा है। इसमें द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग तथा इसी सम्बन्ध में वी रामचंद्रन की अध्यक्षता में बने कार्य समूह (वर्ष 2011) की संस्तुति एवं सुझाव बहुत महत्वपूर्ण है।

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद 243 छ जो पंचायतों के प्राधिकार और दायित्व से सम्बंधित है, को पुन: संशोधित करने का सुझाव दिया है। उसने अपने स्तर से इस अनुच्छेद मे 11वीं अनुसूची के सभी विषयों से संबंधित अधिकार सौंपने के स्पष्ट प्रावधान की बात की है। इतना ही नहीं उसने संघ एवं राज्य की सभी संगत कानूनों की तत्काल समीक्षा करने तथा उनको तदनुसार संशोधित करने का भी सुझाव दिया है। उसने संविधान के अनुच्छेद 252 जिसमें दो या अधिक राज्यों के लिए संसद को विधि बनाने की शक्ति दी गई है, का हवाला देते हुए कहा है कि स्थानीय शासनों और समुदायों को अधिकारों, जिम्मेदारियों और कार्यों को हस्तांतरण का विस्तृत सिद्धांत विहित किया जाना चाहिए जिसमें पूरकता का सिद्धांत, लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण, सही मायने में सत्ता का हस्तांतरण तथा नागरिक केन्द्रित व्यवस्था को विशेष रूप से शामिल किया गया है।

लगभग इसी प्रकार वी रामचंद्रन की अध्यक्षता वाले कार्य समूह ने स्थानीय सरकार के एक मजबूत तंत्र के विकास को केंद्र में रख कर अपनी संस्तुतियां दी है। रिपोर्ट के दूसरे चैप्टर में कार्य समूह की यह चिंता कि, पंचायत 'स्थानीय सरकार' के रूप में दिखाई नहीं पड़ रही है, उसके कारणों का स्पष्ट उल्लेख किया है जिसमें अधिकारों के हस्तांतरण का न होना, केंद्र व राज्य सरकार की ओर से पंचायत के द्वारा समानांतर अन्य संस्थाओं को खड़ा करना, नौकरशाही का नियंत्रण, सिर्फ केंद्र व राज्य

की स्कीमों के लिए धन देना तथा राज्य के अधिनियमों में ग्राम सभा को पर्याप्त अधिकार न देना जैसे कारणों को चिह्नित किया है। इन कारणों से मुक्ति का रास्ता भी उसमें सुझाया है। इसके लिए उसमें अगले 6 वर्षों (2011 से 2017 तक) के लिए एक रोड मैप भी तैयार किया था। इसी के साथ पंचायत के लिए कर्मचारियों का अलग से कैडर बनाने, सामानांतर संस्थाओं को पंचायती व्यवस्था में विलय करने, 29 विषयों के समस्त कार्य, कर्मी, कोष पंचायतों को सौंपने तथा स्थानीय नियोजन को प्राथमिकता देने पर जोर दिया। साथ ही चुने हुए प्रतिनिधियों की क्षमता और कुशलता के विकास के तथा मतदाताओं की जागरूकता पर भी बल दिया है।

भारत सरकार की तो शुरुआती दौर से ही यह मंशा रही है कि नयी पंचायतीराज व्यवस्था के अंतर्गत ग्राम सभाओं को वही स्थान व अधिकार प्राप्त हो जो देश की राज्य व्यवस्था में विधायिका को प्राप्त है। इस संदर्भ में 17 मार्च, 1999 को भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्री की ओर से देश के सभी मुख्यमंत्रियों को भेजा गया वह पत्र उल्लेखनीय है जिसमें ग्रामसभा को विधायिका का दर्जा दिए जाने का सुझाव है। उसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि जब तक भूमि और अन्य संसाधनों के प्रबंधन और झगड़ों को निपटाने के अधिकार ग्राम सभाओं को नहीं सौंपे जाते, तब तक वास्तविक स्वशासन नहीं हो सकता है।

ग्राम पंचायत विकास योजना : अपनी सरकार की अपनी योजना

भारत के संविधान द्वारा पंचायत को सेल्फ गवर्नमेंट के रूप में प्रतिष्ठित किये जाने का परिणाम यह हुआ है कि राष्ट्रीय स्तर पर जो राजस्व (रेवन्यू) इकट्ठा होता है, उसका एक हिस्सा इस सरकार को भी अब मिलने लगा है। भारत के 14 वें वित्त आयोग ने ग्राम पंचायतों को पांच वर्ष (2015 से 2020 तक) के लिए लगभग दो लाख करोड़ रुपये का हिस्सा तय किया था। जो औसतन प्रति ग्राम पंचायत 80 लाख रुपया होता है। यह धनराशि भारत सरकार या राज्य सरकार की किसी स्कीम का पैसा नहीं है, यह वित्त आयोग द्वारा तय की गई वह धनराशि है जिसके आधार पर 'अपनी गांव सरकार' को स्वयं अपने गांव के विकास के लिए योजना बनानी है। किस विषय पर योजना बनेगी और कैसे बनेगी, यह सब गांव के नागरिकों को स्वयं तय करना है तथा अपनी ग्राम सभा के माध्यम से स्वयं उसे स्वीकृत भी करना है। अर्थात उसे अपने गांव के विकास के बारे में विचार करने का, निर्णय लेने का तथा स्वयं करने का पूरा अधिकार इस बजट के माध्यम से उसी तरह से दिया गया, जिस तरह भारत सरकार को भारत के बारे में तथा राज्य सरकार को राज्य के बारे में दिया गया है। इस पंचवर्षीय योजना को 'ग्राम पंचायत विकास योजना' (GPDP) के नाम से संबोधित किया जा रहा है।

15 वें वित्त आयोग की भी अंतरिम रिपोर्ट आ गई है जिसमें वर्ष 2020-21 के लिए 60,750 करोड़ रुपये का आवंटन पंचायत सरकार के लिए किया गया है। वास्तव में यह योजना सही अर्थों में पंचायत को सरकार के रूप में प्रतिष्ठित करने का अत्यंत महत्वपूर्ण कदम है।

ई-पंचायत की एक सार्थक पहल

कंप्यूटर, इंटरनेट और अन्य संबंधित एप्लीकेशनों का उपयोग भी पंचायतों को अधिक सक्षम संस्था के रूप में कार्य करने और स्थानीय नागरिकों को बेहतर सुविधाएं प्रदान करने के लिए भारत सरकार द्वारा ई-पंचायत की एक सार्थक पहल शुरू की गयी है।

इसके लिए केंद्र सरकार और राज्य सरकारों द्वारा अनेक कंप्यूटर आधारित एप्लीकेशन विकसित की गई है, जिनका उपयोग पंचायतें नियोजन एवं बजटिंग, लेखांकन, सूचना की रिपोर्टिंग और प्रदर्शित करने हेतु कर सकती हैं। ई-गवर्नेंस के अंतर्गत केंद्र एवं प्रदेश सरकार द्वारा पंचायतों को सूचना एवं संचार तकनीकी (आईसीटी) का संरचनात्मक ढांचा उपलब्ध कराने हेतु निम्नलिखित प्रयास किए जा रहे हैं-

पंचायत के कामकाज में कंप्यूटर एप्लीकेशन का प्रयोग- पंचायतों को पारदर्शिता से निर्णय लेने, नागरिकों को सूचना प्रदर्शित करने, सामाजिक लेखा परीक्षा, नागरिकों को बेहतर सुविधा सेवा सुपुर्दगी के लिए, आंतरिक प्रबंधन और कार्य कुशलता में सुधार के लिए, निर्वाचित प्रतिनिधियों और अधिकारियों के क्षमता निर्माण के लिए, सेवाओं एवं सामान की पारदर्शी अधिप्राप्ति के लिए कंप्यूटर एप्लीकेशनों के उपयोग में सक्षम बनाने के लिए भारत सरकार ने 11 एप्लीकेशन वाला एक पंचायत एंटरप्राइज साइट (http://panchayatonline.gov.in) विकसित किया गया है।

1. लोकल गवर्नमेंट डायरेक्टरी (एल.जी.डी.)- स्थानीय शासन निर्देशिका (लोकल गवर्नमेंट डायरेक्टरी) का उद्देश्य पंचायतों की निर्देशिका को ऑनलाइन रखना है। इसके माध्यम से सभी राजस्व ग्रामों को ग्राम पंचायत से, ग्राम पंचायत को क्षेत्र पंचायत से तथा क्षेत्र पंचायत को जिला पंचायत से मैप किया गया है।
2. प्लान प्लस- प्लान प्लस सॉफ्टवेयर, पंचायतों और स्थानीय निकायों की प्लानिंग प्रक्रिया में मदद करने हेतु।
3. एक्शन सॉफ्ट- कार्यों की वास्तविक एवं वित्तीय प्रगति की रिपोर्ट के लिए।
4. प्रिया सॉफ्ट- अकाउंट्स के सहज एवं पारदर्शी रखरखाव और प्रबंधन हेतु।
5. नेशनल ऐसेट डायरेक्टरी- पंचायतों द्वारा सृजित/नियंत्रित व अनुरक्षित परिसंपत्तियों को एक यूनीक कोड प्रदान करने हेतु।
6. एरिया प्रोफाइल (Area Profiler)- इसमें पंचायत अपनी प्रोफाइल बना सकती है, जिससे उसका संक्षिप्त ब्यौरा, पहुंचने के लिए मार्ग, पर्यटकों की रुचि के स्थान, ठहरने की सुविधा आदि शामिल हैं।
7. नेशनल पोर्टल- पंचायतें, राष्ट्रीय पंचायत पोर्टल (नेशनल पंचायत रिपोर्ट) ई-एप्लीकेशन का उपयोग करके, अपनी स्वयं की वेबसाइट बना सकती है।
8. सर्विसप्लस एवं शिकायत निवारण- कार्यकर्ता विशेष के कार्य निष्पादन की निगरानी करने और सुधारात्मक कदम उठाने हेतु
9. सोशल ऑडिट मीटिंग मैनेजमेंट- सामाजिक लेखा परीक्षा तथा बैठक का प्रबंधन एप्लिकेशन। इसका उद्देश्य केंद्र तथा राज्य सरकारों द्वारा अलग-अलग योजनाओं/कार्यक्रमों के अंतर्गत किए जा रहे कार्यों की सामाजिक लेखा परीक्षा को सुसाध्य बनाना है।
10. ट्रेनिंग मैनेजमेंट पोर्टल- ग्राम पंचायत के कार्यकर्ताओं और निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण संबंधी।
11. जीआईएस - पंचायतों को अन्य ई-एप्लीकेशनों पर उपलब्ध बुनियादी आंकड़ों को एक जीआईएस मैप पर उपलब्ध कराने हेतु। ❑

लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ

जगदीश उपासने

संविधान में प्रेस यानी मीडिया हमारे मौलिक अधिकारों में शामिल है। यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हिस्सा है। दिलचस्प बात यह है कि प्रेस की स्वतंत्रता संविधान के मौलिक अधिकारों में अलग से शामिल नहीं है, यह संविधान में मौलिक अधिकारों से सम्बंधित भाग तीन में शामिल है और अनुच्छेद 19 (1) (ए) में वर्णित 'बोलने तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में ही शामिल है। डॉ आंबेडकर ने संविधान की ड्राफ्टिंग कमेटी की ओर से बोलते हुए इसे स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि प्रेस यानी मीडिया को ऐसा कोई विशेष अधिकार नहीं है जो किसी सामान्य व्यक्ति या नागरिक को प्राप्त नहीं है। डॉ आंबेडकर ने कहा, ''संपादक और प्रेस के मैनेजर सभी, देश के नागरिक हैं और जब वे अपने समाचारपत्र में लिखते हैं तो वे सिर्फ अभिव्यक्ति के अपने अधिकार का ही उपयोग कर रहे होते हैं।'' प्रेस की स्वतंत्रता का बुनियादी सिद्धांत है ''लोगों का जानने का अधिकार'' जो सूचनाओं और जानकारियों के मुक्त प्रवाह से जुड़ा है। इस तरह यह प्रशासन और लोकतांत्रिक सरकार में आम लोगों की सहभागिता निश्चित करता है। प्रेस की स्वतंत्रता के विभिन्न मामलों में सुप्रीम कोर्ट के अनेक निर्णयों से स्पष्ट होता है कि प्रेस की आजादी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार से ही उत्पन्न होती है और उसीमें शामिल है। प्रेस यानी मीडिया आम लोगों से न तो ऊपर है, न ही ऊंचा है और किसी विशेषाधिकार का दावा भी नहीं कर सकता।

प्रेस पर ऐसे कोई प्रतिबंध भी नहीं लगाए जा सकते जो किसी सामान्य नागरिक पर नहीं लगाए जा सकते हों। भारत के संविधान की यह व्यवस्था अमेरिका के संविधान के उलट है जहां प्रेस की स्वतंत्रता मौलिक अधिकारों में अलग से शामिल है और अभिव्यक्ति के इन अधिकारों को लगभग संपूर्ण और चुनौतीहीन बना दिया गया है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता यानी ''बोलने तथा अभिव्यक्ति की आजादी'' संविधान में मौलिक अधिकार के बतौर शामिल है जो संविधान के भाग तीन के अनुच्छेद 14 से अनुच्छेद 32 में वर्णित हैं। ये हरेक नागरिक को मिले जन्मसिद्ध अधिकार हैं जिनमें जीवन की गारंटी और सुरक्षा का अधिकार भी है। लोकतंत्र में नागरिक स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए ये अधिकार संविधान निर्माताओं ने निश्चित किए हैं। 2002 में मौलिक अधिकारों की सूची में शामिल किया गया शिक्षा का अधिकार 2010 में अमल में लाया गया। इसी तरह सूचना के अधिकार को भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के साथ जोड़ा गया। अनुच्छेद 19 से 22 में वर्णित विभिन्न तरह की स्वतंत्रता को ''मूलभूत स्वतंत्रता'' का दर्जा प्राप्त है। इनमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। संविधान की प्रस्तावना में भी भारत के सभी नागरिकों को अपने स्वतंत्र विचार रखने, इन विचारों को अभिव्यक्त करने, अपनी-अपनी आस्था और विश्वास रखने तथा पूजा-अर्चना की स्वतंत्रता की गारंटी दी गई है। संविधान के अनुच्छेद 19 (1) में नागरिक स्वतंत्रता से संबंधित छह अधिकार शामिल हैं। इनमें

(ए) बोलने तथा अभिव्यक्ति की आजादी,

(बी) लोगों के बिना हथियार लिए शांतिपूर्वक जमा होने,

(सी) संघ-सभा या यूनियन बनाने,

(डी) देश भर में आजादी से विचरण करने,

(ई) देश के किसी भी क्षेत्र में बस जाने और निवास करने और

(एफ) समाप्त... (संपत्ति का मौलिक अधिकार समाप्त कर दिया गया है)

(जी) अपनी मर्जी का प्रोफ़ेशन, नौकरी, उद्योग और व्यवसाय करने का अधिकार

पहले संपत्ति खरीदने, रखने या बेचने का अधिकार भी नागरिक स्वतंत्रता से जुड़े इन मौलिक अधिकारों में शामिल था। लेकिन विकास और उन्नति की आवश्यकता के मद्देनजर इसे मौलिक अधिकारों की सूची से हटा लिया गया, हालांकि यह एक संवैधानिक अधिकार है। नागरिक स्वतंत्रता के ये अधिकार देश के दूसरे

लेखक वरिष्ठ पत्रकार है। वे इंडिया टुडे (हिन्दी) संस्थापक संपादक रह चुके हैं। ईमेल: jupasane@gmail.com

कानूनों तथा संविधान के अन्य अनुच्छेदों में दी गई व्यवस्थाओं से प्रभावित होते हैं।

लेकिन भारतीय संविधान में अभिव्यक्ति और प्रेस की आजादी का अधिकार संपूर्ण या असीम और अबाध नहीं है। उस पर अनुच्छेद 19 (2) और 19 (3) के तहत ''युक्तिसंगत प्रतिबंध'' लगाए गए हैं। इसका मतलब यह है कि सरकारें इनकी रोकथाम के लिए कानून बना सकती है। शुरुआती दौर में अनुच्छेद 19 (1) (ए) में वर्णित अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अनुच्छेद 19 (2) के तहत केवल सात तरह के प्रतिबंध थे जिनकी संख्या दो अलग-अलग संशोधनों के बाद अब आठ है। अनुच्छेद 19 (1) (ए) में कहा गया है ''सभी नागरिकों को बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होगी।'' लेकिन शुरू में अनुच्छेद 19 (2) के अंतर्गत इस मौलिक अधिकार पर सात पाबंदियां थीं। इस अनुच्छेद में कहा गया था कि ''अनुच्छेद 19 (1) (ए) में वर्णित अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार राज्य (स्टेट) यानी सरकार को अपमान, बदनामी, मानहानि, न्यायालय की अवमानना, शालीनता या नैतिकता पर चोट करने वाले, या राज्य की सुरक्षा को संकट में डालने या सरकार को उखाड़ फेंकने की मंशा रखने वाले किसी मामले से संबंधित कानून बनाने से प्रतिबंधित नहीं करता।''

यह जानना दिलचस्प है कि भारत के संविधान में 1951 में पश्यगामी प्रभाव (पिछली तारीख) से हुआ पहला संशोधन बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारंटी से जुड़े अनुच्छेद 19 (2) में किया गया और इस संशोधन का कारण बने दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं वाले समाचार पत्रों की स्वतंत्रता से संबंधित सुप्रीम कोर्ट के दो निर्णय तथा पटना हाइकोर्ट का एक निर्णय। 1951 के संशोधन के बाद अनुच्छेद 19 (2) में कहा गया कि अनुच्छेद 19 (1) (ए) में वर्णित अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार से किसी वर्तमान कानून का कार्यान्वयन प्रभावित नहीं होता और राज्य (स्टेट) की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मित्रता के संबंधों, सार्वजनिक व्यवस्था (पब्लिक ऑर्डर), शालीनता या नैतिकता के हित में या न्यायालय की अवमानना, मानहानि या अपराध के लिए उकसावा के संदर्भ में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर

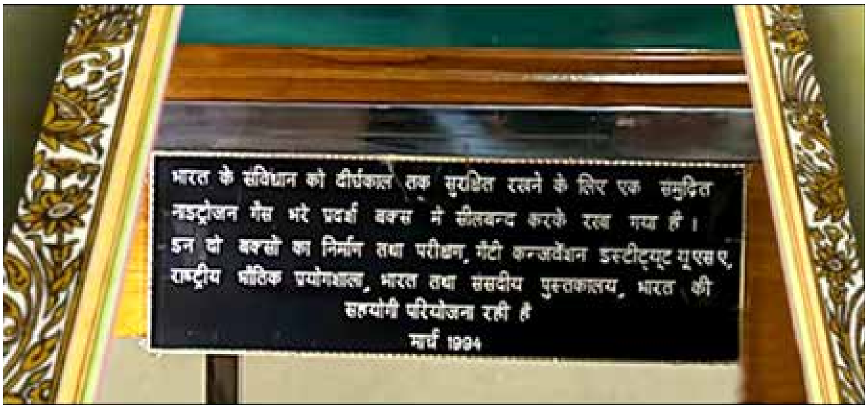

युक्तिसंगत प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। इस तरह अनुच्छेद 19 (2) में तीन नई बातें जोड़ी गईं: प्रतिबंध से पहले ''युक्तिसंगत'' का प्रयोग; विदेशी राज्यों के साथ मित्रता के संबंध और ''सार्वजनिक व्यवस्था (पब्लिक ऑर्डर)।'' बाद में 1963 में किए गए 16वें संविधान संशोधन के जरिए प्रतिबंधों में ''देश की संप्रभुता और अखंडता'' को भी जोड़ा गया। इन संशोधनों से 'राज्य' यानी सरकार को यह अधिकार मिल गया कि वह अनुच्छेद 19 (1) (ए) में दी गई अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर विभिन्न तरह के कानून बनाकर ''युक्तिसंगत'' प्रतिबंध लगा सकती है।

संविधान में 1 जून, 1951 में हुआ पहला संशोधन जो दरअसल अभिव्यक्ति की आजादी और इस तरह प्रेस की आज़ादी को भी सीमित करता था, जिन दो अखबारों के मामलों में सुप्रीम कोर्ट के फैसलों के कारण हुआ, वे थे रोमेश थापर के संपादकत्व वाला मुंबई से छपने वाला पत्र 'क्रॉसरोड्स' जिसके तत्कालीन मद्रास राज्य में प्रवेश तथा वितरण पर राज्य सरकार ने कम्युनिस्ट पार्टियों को प्रतिबंधित करने के बाद 1950 में मद्रास मेंटेनेंस ऑफ पब्लिक ऑर्डर एक्ट 1949 के अंतर्गत पाबंदी लगा दी थी। रोमेश थापर ने इस प्रतिबंध को सुप्रीम कोर्ट में इस आधार पर चुनौती दी कि यह पाबंदी बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का हनन है। दूसरा समाचार पत्र था दिल्ली से प्रकाशित होने वाला राष्ट्रीय विचारों का साप्ताहिक 'ऑर्गनाइज़र' जिसके संपादक के आर मल्कानी और प्रकाशक बृजभूषण थे। दिल्ली के कमिश्नर ने ईस्ट पंजाब पब्लिक सेफ्टी एक्ट 1949 के तहत 'ऑर्गनाइज़र' पर देश विभाजन से संबंधित कोई भी ''भड़काऊ'' सामग्री, फोटो या कार्टून छापने पर पाबंदी लगा दी थी। 'ऑर्गनाइज़र' के संपादक को आदेश दिया गया वे सरकारी स्रोतों के अलावा किसी भी राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय समाचार एजेंसी से मिली हरेक साम्प्रदायिक सामग्री, फोटो या कार्टून'' प्रकाशन से पूर्व जांच-पड़ताल के लिए पेश करे। यह सेंसरशिप थी जिसे 'ऑर्गनाइज़र' ने सुप्रीम कोर्ट में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के हनन के आधार पर चुनौती दी। 'ऑर्गनाइज़र' के मामले में अदालत का फैसला उसी दिन हुआ जिस दिन 'क्रॉसरोड्स' के मामले में निर्णय दिया गया। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि ''पब्लिक ऑर्डर'' और ''पब्लिक सेफ्टी'' ये शब्द अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पाबंदियां लगाने वाले अनुच्छेद 19 (2) के अंतर्गत वर्णित नहीं हैं और अभिव्यक्ति की आजादी पर प्रतिबंध केवल तभी विधिसम्मत है जब यह ''राज्य की सुरक्षा संकट में डालने'' या ''सरकार को उखाड़ फेंकने'' से संबंधित होता। सरकार की महज आलोचना कोई ऐसी अभिव्यक्ति नहीं है जो पाबंदियों के दायरे में आए। सुप्रीम कोर्ट ने दोनों पत्रों पर प्रतिबंध अवैध घोषित कर दिए। तीसरा निर्णय पटना हाइकोर्ट के जज सरजू प्रसाद का था जिन्होंने अपने निर्णय में कहा था, ''यदि कोई व्यक्ति प्रेस के माध्यम से या मुंह से बोलकर हत्या या अन्य किसी संज्ञेय अपराध के लिए उकसावा देता है तब भी वह बिना किसी सजा के भय के ऐसा कर सकता है क्योंकि वह बोलने और अभिव्यक्ति की आजादी का दावा कर सकता है।''

'क्रॉसरोड्स' तथा 'ऑर्गनाइज़र' के मामलों में सुप्रीम कोर्ट के निर्णय और पटना हाइकोर्ट के फैसले से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और देश की सुरक्षा, संप्रभुता और अखंडता में संतुलन स्थापित करने का

t.me/PDFKaAdda

महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित हो गया। तत्कालीन गृहमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने माना कि 'क्रॉसरोड्स' तथा 'ऑर्गनाइज़र' के मामलों में सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों ने ''प्रेस को नियंत्रित करने के लिए हमारे सभी दंडात्मक कानूनों की नींव हिलाकर रख दी है।'' प्रधानमंत्री नेहरू इन निर्णयों से इतने विचलित थे कि मौलिक अधिकारों के संबंध में सरकार को अदालती निर्णयों से होने वाली परेशानी के मद्देनजर उन्होंने विधि मंत्री डॉ आंबेडकर को लिखा कि कानून-व्यवस्था और देश तोड़ने की गतिविधियों से जुड़े सभी कानूनों में तत्काल प्रभाव से संशोधन किया जाना चाहिए। राष्ट्रपति डॉ राजेंद्र प्रसाद का माननना था कि संविधान में संशोधन करने की कोई जरूरत नहीं है और ये तभी किए जाने चाहिए जब लगे कि रद्द किए गए कानून के प्रावधानों को संविधान के अनुरूप लागू करना असंभव हो जाए। आखिरकार पंडित नेहरू की चली और अभिव्यक्ति की आजादी को सीमित करने से संबंधित संशोधन के लिए उन्होने कैबिनेट कमेटी गठित कर दी। गृह मंत्रालय ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अपवादों में ''पब्लिक ऑर्डर'' और ''अपराध के लिए उकसावा'' जोड़ने की सिफारिश की। अपवादों वाले मूल अनुच्छेद 19 (2) में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पाबंदियों के आगे ''युक्तिसंगत'' शब्द नहीं था लेकिन डॉ आंबेडकर की अगुआई वाला विधि मंत्रालय इस शब्द को जोड़े जाने पर अड़ा रहा। हालांकि संशोधनों का पहला ड्राफ्ट जब पेश किया गया तो उसमें ''युक्तिसंगत'' शामिल नहीं किया गया। डॉ श्यामाप्रसाद मुखर्जी और एच एन कुंजरू ने इस संशोधन को अभिव्यक्ति की आजादी का खात्मा बताते हुए इसका जमकर विरोध किया। इस पर नेहरू अपने सख्त रुख से पीछे हटते हुए पाबंदियों के आगे ''युक्तिसंगत'' शब्द जोड़ने पर राजी हो गए हालांकि उनका मानना था कि यह शब्द अनेकार्थी और अस्पष्ट है और इससे अदालतों को यह तय करने अधिकार मिल जाएगा कि अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य पर लगाई गई पाबंदी ''युक्तिसंगत'' है या नहीं।

और हुआ ऐसा ही है। सरकारें चाहे भी तो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कोई गैर-वाजिब पाबंदी नहीं लगा सकती। देश के हाइकोर्टों और सुप्रीम कोर्ट के अनेकानेक निर्णयों में अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य पर गैर-युक्तिसंगत प्रतिबंधों को खारिज किया गया है। इसीके साथ ही अदालतों ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर राजद्रोह, अपमान, मानहानि, अश्लीलता, अनैतिकता, अदालतों की अवमानना, सार्वजनिक व्यवस्था बिगाड़ने तथा देश की सुरक्षा, संप्रभुता और अखंडता को चुनौती देने वाले कृत्यों को दंडित भी किया है। इस तरह अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का अधिकार अपने आप में परिपूर्ण नहीं है लेकिन उस पर गैर-विधिसम्मत पाबंदियां भी थोपी नहीं जा सकती।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के आड़ में राजद्रोह, अपमान, मानहानि, अश्लीलता, अनैतिकता, अदालतों की अवमानना,

सार्वजनिक व्यवस्था बिगाड़ने तथा देश की सुरक्षा, संप्रभुता और अखंडता को चुनौती देने वाले कृत्यों/अपराधों को संविधान के अंतर्गत भारतीय दंड विधान (आइपीसी) तथा अन्य अनेक कानूनों के तहत अभियोजन चलाकर दंडित किया जा सकता है। मसलन आइ पी सी की धारा 124(ए) कहती है कि कोई व्यक्ति यदि विधि द्वारा स्थापित सरकार के विरुद्ध लिखकर, बोलकर, संकेत देकर या फिर अपनी अभिव्यक्ति के ज़रिए 'विद्रोह' करता है या फिर नफ़रत फैलाता है या ऐसी कोशिश करता है तो उसे अधिकतम उम्रक़ैद या तीन वर्ष या जुर्माने की सजा हो सकती है। 1962 में केदारनाथ बनाम बिहार राज्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट के सात जजों की बेंच ने एक ऐतिहासिक फ़ैसला दिया था। इसके अनुसार ऐसा कृत्य जिसमें विधि द्वारा स्थापित सरकार के विरुद्ध अव्यवस्था फलाने या क़ानून व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा करने या फिर हिंसा को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति या फिर मंशा हो, तो उसे राजद्रोह माना जाएगा। इसके अतिरिक्त हार्दिक पटेल बनाम गुजरात राज्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा की यदि कोई व्यक्ति अपने भाषण या कथन के ज़रिए विधि सम्मत सरकार के विरुद्ध हिंसा का आह्वान करता है तब उसे राजद्रोह माना जाएगा।

लेकिन जब संविधान बना तब ना तो टीवी चैनल थे और ना ही इंटरनेट था। तब सिर्फ़ प्रिंट यानी समाचारपत्र और पत्रिकाएं थीं। इसलिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकारों में शामिल प्रेस की स्वतंत्रता का अधिकार और उससे जुड़े विभिन्न क़ानून पर्याप्त थे। लेकिन सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार के साथ ही मीडिया के क्षेत्र में भी प्रौद्योगिक प्रगति होने लगी। पहले सिनेमा आया, फिर रेडीयो आया, टीवी चैनल आए यानी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रादुर्भाव हुआ, फिर 1969 में इंटरनेट आया, और 1989 में वर्ल्ड वाइड वेब यानी डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू का जन्म हुआ। उससे बाद तो मीडिया का पूरा ढांचा ही बदल गया। सबसे पहली बात तो यह हुई की प्रेस मीडिया में तब्दील हो गया। समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं को प्रेस इसलिए कहा जाता था क्योंकि यह सब प्रिंटिंग प्रेस में छपता था। टीवी और न्यूज़ चैनल इलेक्ट्रॉनिक मीडिया इसलिए कहलाए क्योंकि ये इलेक्ट्रॉनिक तरंगों पर आधारित हैं और डिजिटल मीडिया तथा सोशल मीडिया उससे भी उन्नत इलेक्ट्रॉनिक तरंगों से चलते है। टेक्स्ट और फ़ोटो अर्थात् प्रिंट की लिखी हुए सामग्री टेक्स्ट कहलाई तो फ़ोटो उसी रूप में रहे। लेकिन इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तथा डिजिटल मीडिया ने वीडियो, और ऑडिओ भेजना भी सम्भव कर दिया। उससे मीडिया शब्द प्रचलन में आया। अब समाचारपत्र हों या पत्रिकाएं, टीवी चैनल हों या डिजिटल मीडिया सब एक छतरी-मीडिया के नीचे आ गए। नए क़ानूनों की आवश्यकता इसीलिए पड़ी। मसलन 1995 में केबल टेलिविज़न नेटवर्क्स (नियमन) क़ानून बना। इसके अतिरिक्त 2011 में केबल आपरेटर्स के नियमन के

लिए इसमें संशोधन किया गया। समूचे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया यानी टीवी तथा रेडीयो और मोबाइल फ़ोन मीडिया के नियमन के लिए केबल टीवी ऐक्ट के अतिरिक्त मुख्यत: प्रसार भारती ऐक्ट (सार्वजनिक प्रसारण के नियमन के लिए) और टेलिकॉम अथॉरिटी यह प्राधिकार हैं। लेकिन अगर ध्यान से देखें तो समूचे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के वास्तविक नियमन के लिए केबल टीवी ऐक्ट नितांत अपर्याप्त है। इसलिए न्यूज़ चैनल पर प्रसारित सामगरि से प्रभावित होने वाले व्यक्ति, समाज और प्रशासन के लिए निदान का कोई ठोस उपाय नहीं है। ये सब तथाकथित सेल्फ़ रेग्युलेशन पर चलते हैं।

सिनेमा के लिए फ़िल्म प्रमाणन बोर्ड है तो प्रिंट मीडिया के लिए प्रेस काउन्सिल ऑफ़ इंडिया मौजूद है, यद्यपि उससे अधिकार अत्यंत सीमित है। वह दोषी पाए जाने पर किसी अख़बार या पत्रिका को दंडित नहीं कर सकती, केवल उसकी निंदा या आलोचना कर सकती है। और इस तरह प्रिंट में छपी सामग्री से प्रभावित व्यक्तियों तथा सरकारों को अदालतों के द्वार खटखटाने के अलावा कोई मार्ग नहीं है। डिजिटल मीडिया तथा सोशल मीडिया के प्रादुर्भाव से मीडिया के क्षेत्र में नई चुनौतियां खड़ी हुई जिनका पूरी तरह समाधान अब भी नहीं हुआ है।

डिजिटल मीडिया तथा सोशल नेटवर्किंग के ज़बरदस्त विस्तार से इस मीडिया के लिए नए क़ानूनों की ज़रूरत आन पड़ी। साइबर अपराध भी इसके साथ बढ़ने लगे।ऑनलाइन कांटेंट को रेग्युलेट करना एक दुरूह मुद्दा बन गया और लगातार बना हुआ है। यह मीडिया का अकेला ऐसा माध्यम है जिस पर प्रसारित और प्रकाशित होने वाली सामग्री, सूचनाओं के फ़िल्ट्रेशन तथा सिलेक्शन के सम्पादक की तरह कोई 'गेटकीपर' नहीं है। इसलिए केंद्र सरकार ने सन 2000 में सूचना प्रौद्योगिकी क़ानून बनाया जिसमें 2009 में कुछ संशोधन किए गए। सोशल मीडिया भी इस क़ानून के अंतर्गत आता है। इस क़ानून से साइबर क्राइम की नकेल कसने की भी कोशिश की गयी है। साइबर आतंकवाद को भी इसमें परिभाषित किया गया है। साइबर अपराधों पर आइ पी सी की भी कुछ धाराएं लागू होती हैं। इस क़ानून से मानहानि वाली, तथ्यहीन और भड़काऊ सामग्री ऑनलाइन

> **नियमन की व्यवस्था ऐसी बननी चाहिए की मीडिया को संविधान में मिली आज़ादी जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हिस्सा है, व्यर्थ में प्रभावित ना हो। अगर हम एक ज़िम्मेदार मीडिया चाहते हैं जो सूचनाओं, जानकारियों, समाचारों-विचारों के प्रसारण के साथ ही गड़बड़ियों-ख़ामियों को उद्घाटित करने वाला विसल ब्लोअर भी बना रहे और हमारे संविधान निर्माताओं की अपेक्षा के अनुरूप समाज का प्रबोधन, जागरण करते हुए समाज को ठीक दिशा में ले जाने और समाज की विचार प्रक्रिया को उचित दिशा देने वाला बने तो नयी चुनौतियों के मद्देनज़र मीडिया के लिए भी एक नयी व्यवस्था के बारे में विचार करना होगा।**

डालने पर कड़ी कार्रवाई की जा सकती है। वैसे समाज में तनाव या संघर्ष की स्थिति में स्थानीय प्रशासन को पुराने क़ानूनों के तहत विशिष्ट क्षेत्र में इंटरनेट बंद करने का कदम उठाना पड़ता है। ज़ाहिर है, इंटरनेट के नियमन के लिए वर्तमान क़ानून काफ़ी नहीं हैं। इसलिए सुप्रीम कोर्ट में सोशल मीडिया का नियमन करने की मांग वाले एक मुक़दमे में केंद्र सरकार ने कहा है वह सोशल मीडिया के नियमन के लिए नए और ठोस नियम इसी वर्ष सन 2020 में ले आएगी। केंद्र सरकार ने अदालत को बताया था कि सोशल मीडिया के नियमन के लिए ड्राफ्ट नियम अभी विभिन्न स्तरों पर विचार-विमर्श के स्तर पर पर हैं और सरकार इनको इसी वर्ष अंतिम रूप दे देगी।

आज़ादी के बाद विस्तार और प्रौद्योगिकी के उन्नयन से मीडिया बहु आयामी हो गया है। यह ना केवल एक उद्योग बन गया है, बल्कि अपने व्यावसायिक हितों की पूर्ति के लिए सचेत भी रहता है। यह नहीं भूलना चाहिए की अब यह मात्र प्रेस नहीं है, एक विशाल मीडिया तंत्र है जो व्यवसाय, राजनीति, प्रचार, विज्ञापन के मिले जुले रूप में सामने आता है। अब यह मात्र समाचारों-विचारों के प्रसारण भर का माध्यम नहीं रह गया, अपितु राजनीति, व्यवसाय, उद्योग, समाज को अपने तरीक़े से हांकने का प्रभावी माध्यम बन गया है जो वास्तविक रूप में तत्काल समाज तक पहुंच रहा है। इसके बढ़ते प्रभाव के कारण इस पर स्वामित्व बनाने और बढ़ाने के भी होड़ चल रही है। बड़े उद्योग समूहों के पास इसके स्वामित्व के कारण क्रॉस-ओनरशिप जैसे विषय भी उठ खड़े हुए है जिसके लिए सरकार को अलग से क़ानून बनाने पड़ सकते है। इसलिए यह मांग लगातार ज़ोर पकड़ रही है की मीडिया को सेल्फ़ रेग्युलेशन पर नहीं छोड़ा जाए, अपितु उसकी ज़िम्मेदारी तय होनी चाहिए और उसका उल्लंघन करने पर कुछ दंड के प्रावधान होने चाहिए। पहला काम तो यह हो सकता है की एक मीडिया नीति बने तथा मीडिया के समग्र नियमन के लिए एक मीडिया रेग्युलटॉरी अथॉरिटी गठित करने पर विचार किया जाए। इस विचार-विनिमय प्रक्रिया में मीडिया स्वामियों, मीडिया के उपभोक्ताओं यानी पाठकों, दर्शकों, श्रोताओं, विधि-विशेषज्ञों वगैरह सभी स्टेकहोल्डर्स (हितधारकों) को शामिल किया जाए। नियमन की व्यवस्था ऐसी बननी चाहिए की मीडिया को संविधान में मिली आज़ादी जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हिस्सा है, व्यर्थ में प्रभावित ना हो। अगर हम एक ज़िम्मेदार मीडिया चाहते हैं जो सूचनाओं, जानकारियों, समाचारों-विचारों के प्रसारण के साथ ही गड़बड़ियों-ख़ामियों को उद्घाटित करने वाला विसल ब्लोअर भी बना रहे और हमारे संविधान निर्माताओं की अपेक्षा के अनुरूप समाज का प्रबोधन, जागरण करते हुए समाज को ठीक दिशा में ले जाने और समाज की विचार प्रक्रिया को उचित दिशा देने वाला बने तो नयी चुनौतियों के मद्देनज़र मीडिया के लिए भी एक नयी व्यवस्था के बारे में विचार करना होगा। ❑

t.me/pdfKaAdda

नागरिकता (संशोधन) कानून 2019

राष्ट्रपति ने 12 दिसंबर 2019 को नागरिकता (संशोधन) कानून 2019 को मंजूरी दे दी और यह गजट में प्रकाशित हो गया। नागरिकता कानून, 1955 (बाद में इसे मुख्य कानून माना गया), के खंड 2 के उपखंड (1) और उपनियम (बी) में ये प्रावधान शामिल किए जाएंगे- ''31 दिसंबर 2014 या इससे पहले अफगानिस्तान, बांग्लादेश और पाकिस्तान से भारत में आने वाले हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई और इस तरह के जिन बाकी लोगों को केंद्र सरकार या पासपोर्ट (भारत में प्रवेश) कानून, 1920 के खंड 3 के उपखंड (2) के उपनियम (सी) या विदेशी नागरिक अधिनियम, 1946 के प्रावधानों या किसी अन्य नियम या आदेश से छूट मिली है, उन्हें इस कानून के तहत अवैध प्रवासी नहीं माना जाएगा।''

मुख्य कानून के खंड 6ए के बाद खंड 6बी को इसमें शामिल किया जाएगा।

(1) केंद्र सरकार या उससे जुड़े प्राधिकार, इस सिलसिले में मिले किसी आवेदन पर परिस्थितियों और पाबंदियों को ध्यान में रखते हुए खंड 2 के उपखंड (1) के उपनियम बी) के प्रावधानों के तहत संबंधित लोगों को पंजीकरण का प्रमाण पत्र या सामान्य नागरिकता प्रमाण पत्र जारी कर सकते हैं।

(2) अगर कोई खंड 5 में दी गई शर्तों का पालन करता है या तीसरी सूची के प्रावधानों के तहत सामान्य नागरिकता हासिल करने की अर्हता पूरा करता है, तो उसे उपखंड (1) के तहत पंजीकरण का प्रमाण पत्र या सामान्य नागरिकता प्रमाणता दिया जा सकता है और वह भारत में अपने प्रवेश की तारीख से इस देश का नागरिक माना जाएगा।

(3) अगर ऐसे किसी भी शख्स के खिलाफ अवैध पलायन या नागरिकता का मामला चल रहा है, तो नागरिकता (संशोधन) कानून, 2019 लागू होने की तारीख के बाद उसे नागरिकता मिलने पर यह मामला खत्म हो जाएगा: बशर्ते ऐसे व्यक्ति को इस खंड के तहत इस आधार पर नागरिकता के लिए आवेदन करने के मामले में अयोग्य नहीं ठहराया जाए कि उसके खिलाफ मामला चल रहा है और केंद्र सरकार या उससे जुड़ा प्राधिकार उसके खिलाफ मामला होने के कारण आवेदन खारिज नहीं करे: बशर्ते इस खंड के तहत नागरिकता के लिए आवेदन करने वाला व्यक्ति बाद में अपने उन अधिकारों और खास अधिकारों से वंचित न हो जाए, जिसका वह हकदार था (आवेदन जमा करने के वक्त)।

(4) इस खंड का कोई भी प्रावधान असम, मेघालय, मिजोरम या त्रिपुरा के जनजातीय इलाके में लागू नहीं होगा। इन इलाकों के बारे में संविधान की छठी अनूसूची में बताया गया है। साथ ही, बंगाल पूर्वी सीमा नियमन, 1873 के तहत अधिसूचित इलाकों में यह प्रावधान लागू नहीं होगा।

मुख्य कानून के खंड 7डी में (i) उपनियम (डी) के बाद एक और उपनियम (डीए) शामिल किया जाएगा–यानि भारतीय विदेशी नागरिक (ओवरसीज सिटीज़न ऑफ इंडिया–ओसीआई कार्ड होल्डर) कार्डधारक द्वारा इस कानून या केंद्र सरकार द्वारा गजट में प्रकाशित संबंधित किसी अन्य कानून के प्रावधानों का उल्लंघन करना, या (ii) उपनियम (एफ) के बाद यह प्रावधान शामिल किया जाएगा– ''अगर किसी भारतीय विदेशी नागरिक को अपना पक्ष पेश करने का मौका नहीं दिया जाता है, तो इस खंड के तहत किसी भी तरह का आदेश नहीं दिया जाएगा।''

मुख्य कानून के खंड 18 के उपखंड (2) में उपनियम (ईई) के बाद (ईईआई) उपनियम को शामिल किया जाएगा- ''खंड 6बी के उपखंड (1) के तहत पंजीकरण प्रमाण पत्र या सामान्य नागरिकता प्रमाण पत्र जारी करने से जुड़े नियम, पाबंदियां और परिस्थितियां।'' खंड 2 में संशोधन। नए खंड 6बी को शामिल करना। खंड 2 के उपखंड (1) के उपनियम (बी) को तहत किसी व्यक्ति की नागरिकता के लिए विशेष प्रावधान। खंड 7 डी में संशोधन।

भारत सरकार का राजपत्र [भाग II-6]- मुख्य कानून की तीसरी अनुसूची के उपनियम (डी) में यह प्रावधान शामिल किया जाएगा- ''इस उपनियम के तहत अफगानिस्तान, बांग्लादेश या पाकिस्तान के हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी या ईसाई समुदाय के लोगों के लिए निवास या भारत सरकार में नौकरी की अवधि ''कम से कम 11 साल'' के बदले ''कम से कम 5 साल'' हो। ❑

स्रोत: भारत सरकार का राजपत्र
(http%//egazette.nic.in/WriteReadData/2019/214646.pdf)

t.me/PDFKaAdda

कृपया ध्यान दें

पत्रिका न मिलने की शिकायत के लिए helpdesk1.dpd@gmail.com पर ईमेल करें, योजना मंगवाने या पुराने अंक प्राप्त करने तथा संबंधित जानकारी के लिए भी इसी ईमेल पर लिखें या संपर्क करें- दूरभाष: 011-24367453

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें–

संपादक (प्रसार एवं विज्ञापन)

प्रसार एवं विज्ञापन अनुभाग, प्रकाशन विभाग, कमरा सं. 56, भूतल, सूचना भवन,
सीजीओ परिसर, लोधी रोड, नयी दिल्ली–110003

भारत के संविधान पर प्रधानमंत्री के विचार

"हमारा संविधान हमें एकता के सूत्र में बांधता है"

"भारतीय संविधान की खास बात यह है कि इसमें नागरिकों के अधिकार और कर्त्तव्यों, दोनों के बारे में प्रमुखता से बताया गया है।"

"देश का नागरिक होने के तौर पर हमें यह सोचना चाहिए कि हम अपने कार्यों के जरिये किस तरह से देश को मजबूत बना सकते हैं।"

अल्पसंख्यकों के लिए नीतियां और योजनाएं

सरकार ने अल्पसंख्यकों समेत समाज के हर तबके की बेहतरी और उत्थान के लिए देशभर में कई तरह की योजनाएं शुरू की हैं। विशेष तौर पर आर्थिक रूप से कमजोर और वंचित तबकों को ध्यान में रखते हुए ऐसी योजनाएं चल रही हैं, जैसे प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (पीएमजेएवाई), प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (पीएम किसान), प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना (पीएमयूवाई), प्रधानमंत्री आवास योजना (पीएमएवाई), बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना आदि। अल्पसंख्यक मामलों का मंत्रालय, खास तौर पर केंद्र सरकार की तरफ से अधिसूचित 6 अल्पसंख्यक समुदायों के लिए योजनाएं/कार्यक्रम चला रहा है। इन समुदायों में बौद्ध, ईसाई, जैन, मुसलमान, पारसी और सिख शामिल हैं। इन समुदायों के लिए मैट्रिक से पहले की छात्रवृत्ति योजना, मैट्रिक के बाद की छात्रवृत्ति योजना और अन्य छात्रवृत्ति योजनाएं शामिल हैं।

- मौलाना आजाद राष्ट्रीय फेलोशिप योजना- इसके तहत वित्तीय मदद के तौर पर फेलोशिप दी जाती है।
- नया सवेरा- मुफ्त कोचिंग और संबंधित योजना- इस योजना का मकसद तकनीकी/प्रोफेशनल कोर्स और प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने वाले उम्मीदवारों/छात्रों को मुफ्त कोचिंग मुहैया कराना है।
- पढ़ो परदेश- इस योजना के तहत अल्पसंख्यक समुदाय के छात्रों को विदेश में उच्च शिक्षा की खातिर लिए गए कर्ज के ब्याज पर सब्सिडी मिलती है।
- नई उड़ान- इसमें संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी), राज्य लोक सेवा आयोग (एसपीएससी), कर्मचारी चयन आयोग (एसएससी) आदि की प्रारंभिक परीक्षा पास करने वाले उम्मीदवारों को सहायता मुहैया कराई जाती है।
- नई रोशनी- अल्पसंख्यक समुदायों की महिलाओं में नेतृत्व की क्षमता विकसित करने का कार्यक्रम।
- सीखो और कमाओ- 14-35 साल के युवाओं के लिए कौशल विकास योजना। साथ ही, योजना का मकसद मौजूदा कामगारों, स्कूल की पढ़ाई छोड़ चुके युवाओं में रोज़गार हासिल करने की क्षमता बढ़ाता है।
- प्रधानमंत्री जन विकास कार्यक्रम (पीएमजेवीके) को मई 2018 में पुनर्गठित किया गया। इसका मकसद उन इलाकों में शिक्षा, कौशल और स्वास्थ्य सुविधाओं को बेहतर बनाना है, जहां बड़ी संख्या में अल्पसंख्यक समुदाय के लोग रहते हैं।
- जियो पारसी- भारत में पारसी समुदाय की आबादी में गिरावट को रोकने के लिए यह योजना शुरू की गई है।
- यूएसटीटीएडी योजना को मई 2015 में शुरू किया।

इसके अलावा, मंत्रालय राज्य वक्फ बोर्ड को मजबूत बनाने के लिए भी योजनाएं चला रहा है और सालाना हज यात्रा के लिए भी इंतजाम सुनिश्चित करने में भूमिका निभाता है।

ऊपर बताई गई योजनाओं के लिए तय किए गए लक्ष्यों और उसकी सफलता के बारे में विस्तार से जानकारी www.minorityaffairs.gov.in, www.maef.nic.in and www.nmdfc.org. जैसी वेबसाइटों पर भी उपलब्ध है।

अल्पसंख्यक मामलों का मंत्रालय केंद्र सरकार द्वारा प्रायोजित प्रधानमंत्री जन विकास योजना को अल्पसंख्यक समुदायों की ज्यादा मौजूदगी वाले इलाकों में चलाता है। इसका मकसद इन इलाकों में सामाजिक-आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाना और देश के बाकी हिस्सों की तरह यहां भी बुनियादी सुविधाएं सुनिश्चित करना है। इस योजना का 80 प्रतिशत संसाधन शिक्षा, स्वास्थ्य और कौशल विकास पर खर्च करने की बात है, जबकि कम से कम 33-40 प्रतिशत संसाधन महिला केंद्रित परियोजनाओं पर खर्च किए जाते हैं।

प्रधानमंत्री जन विकास योजना के तहत अल्पसंख्यकों की ज्यादा मौजूदगी वाले इलाकों में आधारभूत संरचना के निर्माण के लिए राज्य सरकार/केंद्रशासित प्रदेश द्वारा प्रस्ताव तैयार किया जाता है। इसके बाद इन प्रस्तावों को अल्पसंख्यक मंत्रालय भेजा जाता है जहां अधिकार प्राप्त समिति इन पर विचार करती है। ❑

स्रोतः पत्र सूचना कार्यालय

t.me/PDFKaAdda